ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 15 नवम्बर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 15 नवम्बर 2015 से 21 नवम्बर 2015

का.शु. –03 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 46, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. नबीनगर में वैदिक यज्ञशाला का उद्घाटन

संसार में प्रत्येक मनुष्य सुख–शान्ति, आरोग्य, समृद्धि और मुक्ति की कामना करता है। यज्ञ के द्वारा इन सबकी प्राप्ति के मार्ग का विविध आख्यान वेदों में मिलता है। आर्य समाज अपनी स्थापना काल से ही वैदिक ज्ञान और संस्कार को समाज में प्रचरित–प्रसारित व प्रवाहित कर रहा है। महर्षि दयानंद की स्मृति में स्मारकस्वरूप स्थापित डी.ए.वी. विद्यालय इसी सर्वहितकारी सोच के प्रतिफल हैं। विभिन्न डी.ए.वी. विद्यालयों में वैदिक यज्ञशाला का निर्माण, दरअसल समाज और भावी भविष्य के बीच वैदिक संस्कार, आधुनिक ज्ञान और सात्विक विचारों के संतुलित संमिश्रण निर्माण–कार्य का एक अभिन्न अंग है।" उक्त बातें डी.ए.वी. प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली के सचिव सह डी.ए.वी. नबीनगर के चेयरमैन श्री रमेश कुमार लेखा ने कहीं। वहीं कार्यक्रम में शामिल श्री जे.के. कपूर, सचिव डी.ए.वी. का नबीनगर में नवनिर्मित इस भव्य वैदिक यज्ञशाला को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए यह यज्ञशाला से छात्र–छात्राओं, शिक्षक–शिक्षकेत्तर कर्मचारियों और कहीं न कहीं प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पूरे गाँव–समाज में भी वैदिक अनुष्ठान और ज्ञान का संचार होगा। उक्त अतिथियों ने संयुक्त रूप से फीता काटकर व सामूहिक मंत्रोच्चारण के साथ यज्ञशाला का विधिवत उद्घाटन किया।

इस अवसर पर उपस्थित डी.ए.वी. पब्लिक स्कूलस, बिहार प्रक्षेत्र–2 के क्षेत्रीय निदेशक डॉ. यू. एस. प्रसाद ने भी उपरोक्त विचारों का समर्थन करते हुए कहा कि निश्चित ही इस पावन कार्य का पावन प्रभाव विद्यालय परिसर सहित पास–पड़ोस पर भी पड़ेगा। इसके अतिरिक्त डी.ए.वी. बक्सर के प्राचार्य अनिल कुमार, डी.ए.वी. कटार डेहरी के प्राचार्य एच.एन. झा व डी.ए.वी. डालमियानगर के प्राचार्य सन्तन कुमार की भी आयोजन में उल्लेखनीय उपस्थित रही। सभी ने यज्ञशाला की भव्यता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। साथ ही इसकी सार्थकता और महत्ता पर भी चर्चा की।

डी.ए.वी. परिवार नबीनगर ने प्राचार्य बासकी प्रसाद के नेतृत्व में सभी अतिथियों का यथोचित स्वागत–सत्कार व अन्ततः धन्यवाद ज्ञापन किया।

डी.ए.वी. कॉलेज फिरोज़पुर में हुआ 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम का आयोजन

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोजपुर कैंट में नारी शिक्षा के प्रति महर्षि दयानन्द जी के योगदान को स्मरण करते हुए 'बेटी पढ़ाओ' अभियान के तहत प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया के मार्गदर्शन में स्वास्थ्य विभाग फिरोजपुर के साथ मिलकर एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्यातिथि थे इंजी. डीपीएस खरबन्दा, डिप्टी कमिश्नर, फिरोजपुर। कार्यक्रम का शुभारम्भ डी.ए.वी. गान से किया गया। तत्पश्चात् मुख्यातिथि ने ज्योति प्रज्वलित की।

कॉलेज की प्राचार्या डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने अपने उद्बोधन में 'महर्षि दयानन्द जी की नारी शिक्षा को देन' के विषय में विस्तार से प्रकाश डाला और कहा कि महर्षि दयानन्द जी ने तो नारी शिक्षा की अलख बहुत पहले ही जगा दी थी। उन्होंने कहा कि नारी सशक्त बन सकती है, केवल सुशिक्षित होकर। शिक्षा उसे आर्थिक स्वतन्त्रता, अपने अधिकारों का ज्ञान और अन्याय के विरूद्ध आवाज बुलन्द करने का साहस प्रदान करती है।

सिविल सर्जन डॉ. प्रदीप चावला ने कहा कि बेटी को पढ़ाने का काम शिक्षा संस्थान कर रहे हैं। बेटी को बचाने का काम उनका विभाग कर रहा है लेकिन इन दोनों का सुखद परिणाम हम सब की मानसिक सोच को बदलने से मिलेगा। जिस दिन समस्त समाज इस मुद्दे पर एकमत होगा कि बेटी माता–पिता पर बोझ नहीं है, उस दिन यह समस्या स्वतः ही हल हो जाएगी। मुख्यातिथि इंजी. डीपीएस खरबन्दा ने छात्राओं को प्रेरित करते हुए कहा कि उन्हे तनिक भी डरने की जरूरत नहीं है। शिक्षा ग्रहण कर अपने अन्दर आत्मविश्वास पैदा करें और जूडो कराटे का प्रशिक्षण प्राप्त कर शारीरिक रूप से बलिष्ठ बनें। सदा सचेत रहें, अपनी रक्षा खुद करना सीखें। डीसी साहिब ने सभागार में उपस्थित हर व्यक्ति को झकझोरते हुए कहा कि आज हम सबको एक अच्छा इंसान बनने की जरुरत है।

डी.ए.वी. बूढ़पुर में नन्हें कलाकारों ने हिन्दी को महिमा मण्डित किया

हिन्दी दिवस के उपलक्ष में हिन्दी भाषा को प्रोत्साहित करने के लिए 14 सितम्बर 2015 को डी.ए.वी. बूढ़पुर विद्यालय के प्रांगण में हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों ने हिन्दी भाषा के महत्त्व का स्पष्ट करते हुए तरह–तरह के कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए, जिसमें कविताएँ, नाटक, गीत आदि थे। प्री प्राइमरी के नन्हें–मुन्ने कलाकारों ने हिन्दी भाषा की वर्णमाला के स्वर और व्यंजन के दवारा "जीवन मूल्यों" पर आधारित प्रस्तुति।

"बूझो तो जानें" प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसे विद्यार्थियों और अध्यापिकाओं की सहभागिता से सम्पन्न किया गया। दूसरी कक्षा के दवारा हिन्दी भाषा की 'गरिमा को बढ़ाते हुए प्रस्तुत नाटिका "मात्राओं की जंग" ने माहौल ही परिवर्तित कर दिया। अंत में प्रधानाचार्या श्रीमती देविका दत्त ने कार्यक्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 15 नवम्बर, 2015 से 21 नवम्बर, 2015

त्रिविध पवित्रतो

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पत्रृतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

ऋग् ९.७३.८

ऋषिः **पवित्रः आङ्गिरसः** । देवता **पवमानः सोमः** । छन्दः **जगती** ।

● **(ऋतस्य)** सत्य का, **(गोपाः)** रक्षक, **(सुक्रतुः)** शुभ प्रज्ञानों और शुभ कर्मों वाला **(सोम प्रभु)**, **(दभाय न)** हिंसा या उपेक्षा किये जाने योग्य नहीं है।, **(सः)** वह, **(हृदि अन्तः)** हृदय के अंदर, **(त्री पवित्रा)** तीन पवित्रों को–विचार, वचन और कर्म की पवित्रताओं को, **(आ दधे)** स्थापित करता है।, **(विद्वान्)** विद्वान्, (सः) वह, **(विश्वा)** समस्त, **(भुवना)** भूतों को, **(अभि पश्यति)** देखता है, **(अजुष्टान्)** अप्रिय, **(अव्रतान्)** व्रत–हीनों को, **(कर्ते)** अंध कूप में, **(विध्यति)** धकेलता है।

● 'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अनृत का घर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म–समर्पण करे, उसे अपने हृदय–मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करे। यदि मानव जीवन में उसकी हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभक्रतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अतः 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तीन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता और कर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अतः वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र हैं, मन में वह पाप–चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद–शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अतः प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य से मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमशः वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी आँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक–चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुओं को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ–कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुर्वृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्धकूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी कि वासना प्रभु दर्शन के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। दूसरी रुकावट क्रोध है। कई अवस्थाओं में क्रोध उचित और आवश्यक भी है। उचित क्रोध जो घर से बाहर देश की रक्षा के लिए, उसकी स्वतन्त्रता के लिए और धर्म की रक्षा के लिए किया जाए। यह क्रोध आत्म दर्शन के मार्ग में रुकावट नहीं। आत्म दर्शन के मार्ग में रुकावट है वह क्रोध, जो घर में किया जाए, स्वार्थ के लिए किया जाए। ऐसा क्रोध घर का, परिवार का, जाति का, देश का, सबका नाश कर देता है, बुद्धि को नष्ट करता है और बुद्धि के नाश होने से सर्वनाश होता है। यह क्रोध ही वह सुरा या शराब है जो भक्त और भगवान के मध्य दीवार बनके खड़ी हो जाती है। क्रोध सारे जप–तप अभ्यास का नाश कर देता है। वेद ने इसे 'विभेदक' कहा तो अकारण नहीं। वस्तुतः यह बहुत भयानक है। साधना के सारे महल को जलाकर यह राख कर देता है।

अब आगे...

अब तीसरी रुकावट का वर्णन कीजिये। यह रुकावट है लोभ। कितने देश इसने उजाड़ दिये, कितनी जातियाँ नष्ट कर दीं, कितने परिवारों का सर्वनाश कर दिया। एक परिवार में दो भाई हैं। जब तक लोभ उत्पन्न नहीं हुआ, अब तक दोनों सुख से, शान्ति से रहते हैं। चहुँ ओर लक्ष्मी खेलती है। आदर है, सम्मान है। लोभ के उत्पन्न होते ही दोनों परस्पर लड़े, दोनों का विनाश हो गया। इस प्रकार लोभ से विनाश का आखेट होने वाले कई लखपतियों को मैंने टूटे हुए जूते पहने और फटे हुए कपड़े पहने रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा करते देखा है। यह लोभ कहीं भी जागे, विनाश को जगाता है। वेद भगवान् ने कहा है–

मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। (यजु. 40.1)

मत लालच कर किसी के धन का, क्योंकि यह धन किसी का भी नहीं। यह तो केवल जीवन व्यतीत करने का साधन है। इसका अधिक लोभ करोगे तो भला नहीं होगा। एक व्यक्ति था। उसके पास एक मुर्गी थी, प्रतिदिन सोने का अण्डा देती थी। उसे बेचकर वह जीवन निर्वाह करता था। एक दिन उसने सोचा– मुर्गी प्रतिदिन एक ही अण्डा देती है, इसे मारकर सारे अण्डे क्यों न निकालू लूँ। मार डाला उसने। एक भी अण्डा न मिला। पहले जो अण्डा प्रतिदिन मिलता था वह भी समाप्त हो गया। इसलिए शास्त्रों ने कहा, लोभ मत करो, लोभ से विनाश होता है। लोभ को हमारे ऋषियों ने पाप का बाप कहा है। प्रत्येक पाप का जन्म इसी से होता है। इसी के कारण व्यक्ति चोरी करता है, डाके डालता है, अपने देश और जाति से विश्वासघात करता है। इसके कारण बेटा पिता को, पति पत्नी को, पत्नी पति को, भाई भाई को कत्ल कर देता है। इसलिए कृपा करके इससे बचो! यह बहुत बड़ा शत्रु है।

परन्तु आजकल तो लोभ का प्रचार इतना बढ़ गया है कि लोभ पैसे के अतिरिक्त और कोई बात सुनना ही नहीं चाहते। लोभ को हृदय में लेकर, क्रोध को सीने में बैठाकर, वासना का बोझ उठाकर ये चाहते हैं कि प्रभु के दर्शन हो जायें, तो कैसे होंगे ये दर्शन? एक बार एक सुनार महर्षि दयानन्द के पास आया; बोला, "मुझे प्रभु–दर्शन करा दीजिये।" महर्षि ने मुस्कराकर कहा, "तीन विवाह तू कर चुका है। प्रतिदिन सोने की चोरी करता है। एक विवाह और करा ले, सोने का चोरी अधिक कर, हो जायेगा प्रभु का दर्शन, प्रभु का न सही तो किसी और का तो होगा।" एक भंग पीने वाला उनके पास आया, उसने भी प्रभु–दर्शन की बात कही तो महर्षि ने योगबल से उसकी वास्तविकता जानकर हँसते हुए कहा, "दो तोले भंग और पी लो भाई! तुम्हें भगवान् से क्या लेना है?"

स्मरण रखो, इस प्रकार आत्मदर्शन नहीं होता। एक ओर प्रभु–दर्शन है, दूसरी ओर तुम हो। दोनों के मध्य में कुछ रुकावटें हैं। इन रुकावटों को दूर किये बिना, इन दीवारों को तोड़े बिना तुम अपने प्रीतम के पास पहुँच नहीं पाओगे। जिस लोभजाल में, मोहजाल में तुम फँसे हो, उससे बाहर निकले बिना तुम्हारा प्रभु कभी मिलेगा नहीं। उनका पता भी मिलेगा नहीं। वहाँ पहुँचने के लिए तो प्रत्येक प्रकार की इच्छा को छोड़ देना पड़ता है। इच्छाएँ छूट जायें, इस इच्छा को भी छोड़ देना पड़ता है–

बाकी अभी है तर्के–तमन्ना की आरजू।
क्योंकर कहूँ कि कोई तमन्ना नहीं मुझे?

तब तो दादू के शब्दों में कहना पड़ता है–

खुशी तुम्हारी त्यों करूँ,
हम तो मानी हार।
भावें बन्दा बख्शिये,
भावें गहि कर मार।।

तब लोभ और लालच के लिए स्थान नहीं रहता, कोई अपना–पराया नहीं रहता,

अपनापन भी नहीं रहता–

उनका पता मिला तो फिर अपना पता कहाँ।
अब आशना कहाँ कोई नाआशना कहाँ।।

इसलिए भाई मेरे, इन रुकावटों का वर्णन किया– वासना, क्रोध और लोभ। चौथी रुकावट है 'अतिथि'– वह मोक्ष जो नाश को पैदा करे। इस मोह से जितना विनाश होता है वह इस समय कहूँगा नहीं, समय थोड़ा है और मुझे कहना बहुत–कुछ है।

पाँचवी रुकावट है भय– यह डर जो मन, बुद्धि, चित्त और शरीर सबको नष्ट करता है। आज संसार में इतना संघर्ष हम देखते हैं। इसका कारण भय के अतिरिक्त और क्या है? अमेरिकन को रूस का डर है, रूस को अमेरिका का। दोनों एक–दूसरे के भय के कारण सारे संसार को उस लक्ष्य की ओर लिये जाते हैं जहाँ विनाश निश्चित है। दोनों जिस बात से डरते हैं उसी को ओर दौड़े जा रहे हैं। इस पाकिस्तान को देखिये। हमारे देश ने उसे कभी नहीं कहा, परन्तु वह इसके डर से अपना विनाश आप किये देता है। निःशुल्क हथियार लेने के लिए उसने अपनी स्वतन्त्रता को गिरवी रख दिया है। अपनी आर्थिक दशा को नष्ट कर लिया, अपने प्रजातन्त्र–विधान का सर्वनाश करके डिक्टेटरशिप स्थापित कर ली। क्यों किया सब–कुछ? इसलिए कि अमेरिका से निःशुल्क सैनिक सहायता ले सके। और सैनिक सहायता क्यों ली? इसलिए कि उसे भारत से डर लगता है। व्यर्थ का भय। परन्तु इसका परिणाम कितना विनाशकारी है! हमारा देश कहता है कि डरो नहीं, परन्तु वह है कि भयभीत हुआ जाता है। उसे देखकर उस स्त्री की कहानी स्मरण हो आती है जो सड़क पर चली जाती थी। उसके निकट ही एक व्यक्ति चला जाता था। उसके एक हाथ में बड़ा–सा तरबूज था, दूसरे हाथ में दूध से भरा हुआ घड़ा, सिर पर एक भारी गठड़ी। स्त्री उसे देख चिल्लाई, "यह मुझे छेड़ेगा।" पास ही एक समझदार व्यक्ति जा रहा था। उसने कहा, "भलीमानस! कैसे छेड़ेगा यह? इसके हाथ तो खाली नहीं, सिर पर बोझ है, दूर यात्रा पर इसे जाना है, फिर तू क्यों डरती है?" स्त्री ने कहा, "यह तरबूज को मुझे पकड़ा देगा, गठड़ी को पीठ पर बाँध लेगा, तब इसका एक हाथ खाली हो जायेगा, फिर यह मुझे छेड़ेगा।" यह दशा पाकिस्तान की है; अकारण डरा जाता है, विनाश के मार्ग पर चला जाता है।

कभी–कभी इस भय से लाभ भी होता है। सुधार भी होता है। वर्षा और तूफ़ानों का भय न होता तो ये मकान कभी बनते नहीं। सर्दी और गर्मी का भय न होता तो कपड़े न बनते। भूख का भय न होता तो खेती–बाड़ी न होती। वह भय जिससे सुधार हो और जीवन स्थिर रहे वह अच्छा है, शेष सब खराब।

इस भय के कारण कैसे–कैसे तमाशा होते हैं! मनुष्य किस प्रकार नीचे गिरता है और किस प्रकार उल्टी बातें करता है, यह पिछले वर्ष हमने देखा। एक गलत बात हो रही थी। कई व्यक्तियों ने, बड़े–बड़े लोगों ने अनुभव किया कि यह बात अशुद्ध है, फिर भी वे इसलिये चुप रहे कि दूसरे लोग कहीं निन्दा न करें। इस इच्छा से अशुद्ध बात की हिमायत करते रहे कि लोग उनकी प्रशंसा करें। अब वे कहते है कि वह बात तो गलत थी; परन्तु उस समय जानते हुए भी उस बात को वे करते रहे, उसका साथ देते रहे। इस प्रकार निन्दा के भय से या प्रशंसा की इच्छा से किसी काम को करना मनुष्य को नैतिक पतन की ओर ले जाता है। यह भय भी एक रुकावट है जो आत्मा और परमात्मा के बीच विद्यमान है।

परन्तु यह केवल बाह्य जगत् में ही नहीं, भीतर के उस जगत् में भी है जिसे साधक लोग ध्यान के समय देखते हैं। इस ध्यान में कभी–कभी इतने सुन्दर दृश्य दिखाई देते हैं कि मनुष्य उन्हें देखते रहना चाहता है। परन्तु कभी–कभी भयानक वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं, बहुत भयावने दृश्य। उन्हें देखकर मनुष्य का हृदय बदल जाता है। एक भाई ने मुझे बताया कि वे ध्यान का अभ्यास करते हैं, कुछ उन्नति भी कर ली। तभी एक दिन ऐसा ही एक भयानक दृश्य उन्हें दिखाई दिया। डरकर उन्होंने आँखें खोल दी। उसके पश्चात् कभी ध्यान ही न लगा। प्रयत्न करने पर भी कोई वस्तु दिखाई नहीं दी।

देखिये, इस प्रकार ध्यान में जो भयानक दृश्य दिखाई देते हैं, वे बुरे नहीं। उनसे डरना व घबराना नहीं चाहिये। वास्तव में ये भयानक दृश्य हमारे अपने मन की मैल हैं। ध्यान के साबुन से धीरे–धीरे यह मैल धोई जाती है। इसलिए इस मैल को देखकर घबराना नहीं चाहिए। प्रार्थना करनी चाहिए कि वह शीघ्र ही दूर हो जाए। हलवाई लोग खाण्ड की चाशनी बनाते हैं तो थोड़ी–थोड़ी देर के पश्चात् उसमें थोड़ा–थोड़ा दूध डाल देते हैं। प्रतिवार जब वह दूध डालता है तब मैल ऊपर आती है। हलवाई उसे निकालकर बाहर कर देता है। इसी प्रकार बार–बार करने से ऐसी चाशनी बन जाती है जिसमें मैल का चिन्ह भी नहीं रहता। यही बात ध्यान में दिखाई देने वाले दृश्यों के सम्बन्ध में भी है। जाप के दूध से मन की चाशनी में यह मैल ऊपर आती है। इसे धीरे–धीरे दूर करते जाइये, अन्त में मन की यह चाशनी निर्मल हो जायेगी।

परन्तु यह तो अभी पाँच रूकावटों का वर्णन हुआ– वासना, क्रोध, लोभ, मोह और भय। छठी रूकावट है चिन्ता।

विचित्र प्रकार की रुकावट है यह! इससे बनता कुछ– भी नहीं, बिगड़ता सब–कुछ है। परन्तु बने या न बने, चिन्ता करने वाले समझते तो नहीं। कभी एक बात की चिन्ता, कभी दूसरी बात की। यह संसार है, इसमें सुख भी है, दुःख भी है। कर्म के फल भोगे बिना यहाँ से छुटकारा नहीं होता–

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते हँसि–हँसि, मूर्ख भुगते रोय।।

जब भुगतना ही है तो फिर रोना किसलिए? हँसकर भुगत लो। और फिर चिन्ता की बात इस संसार में है क्या? सबसे बड़ी बात तो मृत्यु है न? वह है निश्चित। रोते रहिये तो भी–

रोवनहारे भी मरे, मरे जलावनहार।
हा–हा करते वे मरे, काहे करूँ पुकार।।

रोनेवाले भी बचे नहीं, हाहाकार करने वाले भी बचे नहीं, फिर यह हाय–तौबाः किसलिए?

यह तो चला–चली का मेला है भाई, यहाँ चिन्ता करके मिलेगा क्या?–

जो ऊगा वह काटिये,
फूला सो कुम्हलाय।
जो बना वो गिर पड़े,
जो आया सो जाय।।

जाना तो है ही, चिन्ता करके जाना या बिना चिन्ता के जाना, जाये बिना निर्वाह नहीं–

पानी का ज्यूँ बुलबुला,
यूँ मानुष की जात।
एक दिना छिप जायेंगे,
तारे ज्यूँ प्रभात।।

नहीं, मृत्यु से भी डरो नहीं। इसकी चिन्ता भी मत करो। चिन्ता से कभी कुछ होता नहीं। भगवान् तो आनन्दरूप है। आनन्द की ज्योति फैल रही है वहाँ। उन्हें मिलना है तो शोक और चिन्ता के इस अंधेरे को दूर करके मिलना होगा। चिन्ता को त्याग देना स्वयं एक योग है।

सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।

सब चिन्ताओं को त्याग देने से रुकावटें–वासना, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिन्ता और शोक–दूर कर दीजिये तो प्रभु का दर्शन होता है अवश्य। परन्तु यह सारा झगड़ा जहाँ से प्रारम्भ होता है, वह है वासना। सब दुःखों की जड़ वह, सब रुकावटों की माँ। इससे बचने का एक ही उपाय है कि नर बनो, नारी बनो। नर और नारी का अर्थ क्या है, यह मैंने पहले बताया। आत्म–ज्ञान जिसका सारथी है और जिसने मन की लगाम को अपने वश में कर लिया है वह नर है, वह नारी है। उसे नारायण का दर्शन होता है। ये नर और नारायण आपस में मिलते हैं अवश्य।

इस सम्बन्ध में एक बात और कहना चाहता हूँ, यह मेरे अनुभव की बात है कि किसी भी कार्य में अति न करो, भगवान् के भजन में भी अति करना कभी–कभी रुकावट का कारण बन जाता है। एक व्यक्ति है विवाह कर लिया उसने। कुछ बच्चे हो गये। तभी प्रभु भजन का शौक जाग उठा। अच्छी बात है। इस शौक का जागना सौभाग्य है। परन्तु अपने बीबी–बच्चों को भुलकर, अपने कर्त्तव्य को छोड़कर वह व्यक्ति हर समय प्रभु–भजन में लगा रहे तो बहुत देर यह बात चलेगी नहीं। एक दिन ऐसी अशान्ति उसके हृदय में उत्पन्न होगी कि सब किया–कराया चौपट हो जाएगा। यह अति जिस प्रकार बुरी है, उस प्रकार यह अति भी बुरी है कि प्रभु को ही भूल जाये; हर समय नॉविल, सिनेमा, सर्कस, नाच–रंग और तमाशे ही देखता रहे। इस अति से भी विनाश होता है।

शेष अगले अंक में....

उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा का त्रैवार्षिक निर्वाचन

सम्बलपुर आर्य समाज सम्बलपुर के विशाल सभागार में बहुत शांत वातावरण में लगीाग 300 आर्य समाजों के 400 से अधिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सभा के प्रधान एवं गुरुकुल आश्रम आसेना के संचालक पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में प्रतिनिधि सभा के चुनाव निर्वाचन अधिकारी श्री धनुर्धर महापात्र ने निर्विघ्नरुप से चुनाव सम्पन्न कराया। निर्वाचन सर्वसम्मति से इस प्रकार हुआ। प्रधान–पूज्य स्वामी धर्मानन्द सरस्वती मन्त्री–श्री वीरेन्द्र कुमार जी पण्डा कोषाध्यक्ष– श्री गोपाल दास जी रावल

डी.ए.वी. नेरचौक में वैदिक गतिविधियाँ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल नेरचौक से प्राप्त एक विज्ञप्ति के अनुसार विद्यालय में इस वर्ष साप्ताहिक हवन करवाए गए। बच्चों के जन्मदिवस के उपलक्ष में मासिक हवन करवाए गए। वार्षिक उत्सव में बच्चों द्वारा स्वामी दयानंद व महात्मा हंसराज जी की जीवनी को चरित्रार्थ किया गया। 22 अप्रैल 2015 को प्रधानाचार्या तथा अन्य पांच अध्यापकों सहित सोलन में आयोजित 'आस्था पर्व' में भाग लिया। दिनांक 8 और 9 मई को महामुनि यज्ञ ब्रह्मा श्री चैतन्य मुनि जी और श्रीमती सत्याप्रिया यति जी के सानिध्य में बच्चों ने धर्म शिक्षा व नैतिक मूल्यों के बारे में जानकारी प्राप्त की।

पौराणिक पण्डित माधवाचार्य से मेरा शास्त्रार्थ

● वेद–मार्तण्ड डा. महावीर मीमांसक

24 जून सन् 1953–54 की बात है। स्थान धनौन्दा गांव, जिला महेन्द्रगढ़ (वर्तमान हरियाणा)। उन दिनों मैं गुरुकुल झज्जर (वर्तमान हरियाणा) में पढ़ता था। पौराणिक पं. माधवाचार्य ने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। पं. माधवाचार्य कमलानगर, देहली में रहते थे और उन दिनों पंजाब का हरियाणा से विभाजन नहीं हुआ था। अतः पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में वर्तमान हरियाणा और देहली सम्मिलित थे। अतः पं. माधवाचार्य का आर्यसमाज को शास्त्रार्थ का यह चेलैन्ज सीधा पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा पर आक्रमण था। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस चैलेंज को पूरी सिंह गर्जना के साथ स्वीकार किया। अब पं. माधवाचार्य ने दूसरा पैंतरा बदला और शर्त रखी कि शास्त्रार्थ केवल संस्कृत भाषा में होगा। क्योंकि पं. माधवाचार्य यह भली भांति जानते थे आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी पण्डित भी संस्कृत में उतनी गति नहीं रखते जितनी शास्त्रार्थ में विजेता वक्ता की होनी चाहिये। अब पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों को चिन्ता हुई कि संस्कृत में शास्त्रार्थ करने के लिये किसका नाम प्रस्तुत किया जाये? क्योंकि आर्यसमाज में पं. शान्तिप्रकाश जैसे धाकड़ शास्त्रार्थ महारथी तो थे परन्तु उनकी संस्कृत में उतनी गति नहीं थी कि धारा प्रवाह बोल सकें।

पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा में उन दिनों पं. जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती और आचार्य भगवान् देव, गुरुकुल झज्जर (स्वामी ओमानन्द जी) भी होते थे, अतः इस समस्या की बात उन तक भी आयी। मैं (लेखक) उन दिनों गुरुकुल झज्जर में पढ़ता था और धाराप्रवाह महाकवि बाणभट्ट की शैली में संस्कृत बोलता था, इस तथ्य को पं. जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती और आचार्य भगवान् देव जी जानते थे और साक्षात् देखते तथा सुनते थे। अतः उन्होंने सभा के दूसरे अधिकारियों को मेरे नाम का सुझाव दिया और सभी की सहमति से यह निश्चय हुआ कि गुरुकुल झज्जर के ब्र. महावीर (लेखक) पं. माधवाचार्य से शास्त्रार्थ करेंगे और शास्त्रार्थ महारथी पं. शान्तिप्रकाश जी जो उन दिनों पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के पण्डित थे, वे ब्र. महावीर की आवश्यकता होने पर सहायता करेंगे। मुझसे पूछा गया तो मैं तो सदैव ऐसे कार्यों के लिये तैयार रहता था क्योंकि गुरुकुल के वार्षिकोत्सवों पर इस प्रकार के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिये मैं ही जाना जाता था। मैं सहर्ष तैयार था। उस समय मेरी आयु 18–20 वर्ष थी। निश्चित सन् कौन सा था, ठीक से याद नहीं।

एक दिन पहले मुझे गुरुकुल से धनौन्दा गांव ले जाया गया। मुझे वहां ढांणी में रखा गया। ढांणी वहां की स्थानीय भाषा में उसे कहा जाता था जो केवल पुरुषों के रहने–ठहरने का स्थान होता था और उसे पूलों की बाड़ से कच्ची छत डाल बनाया जाता था। पं. शान्तिप्रकाश जी वहां पहले ही पहुंच चुके थे।

अगले दिन 24 जून को शास्त्रार्थ होना था। शास्त्रार्थ के लिये गांव की चौपाल को चुना गया। एक तरफ मैं आसन पर बैठ गया, आसन चौपाल के चबूतरे पर लगाया गया था। मेरे पीछे आदरणीय पं. शान्ति प्रकाश जी बैठ गये। शास्त्री महारथी पं. शान्तिप्रकाश जी के बैठने से मुझे बहुत ही प्रोत्साहन और हौसला मिला। मेरे बांये तरफ गुरुकुल झज्जर से लाई गई आवश्यक पुस्तकों का ढेर रख दिया गया, ताकि प्रमाण की आवश्यकता पड़ने पर तत् सम्बद्ध पुस्तक से उसे दिखाया जा सके। मेरे समक्ष पं. माधवाचार्य जी बैठे थे उनकी सहायतार्थ उनका नवयुवक पुत्र पं. प्रेमाचार्य बैठा था। और हमारी तरफ हमारे पक्ष के दर्शक और समर्थक बैठ गये और पं. माधवाचार्य की तरफ उनके समर्थक और दर्शक बैठ गये।

शास्त्रार्थ का विषय वेदों में ईश्वर की मूर्ति पूजा (वेदेषु ईश्वरस्य मूर्तिपूजा) था। शास्त्रार्थ की रणनीति मैंने बना ली थी। ईश्वर के निराकार होने के वेदों से अनेक प्रमाण मैंने उपस्थित कर लिये थे, जब ईश्वर निराकार है तो उसकी मूर्ति कैसी और उसकी मूर्ति के अभाव में उसकी मूर्ति की पूजा की कैसी? इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी पं. माधवाचार्य को घेरने की मैंने सोच बना ली थी।

शास्त्रार्थ का मण्डनात्मक पक्ष (वेदों में मूर्तिपूजा) क्योंकि पं. माधवाचार्य का था अतः हमने उन्हें ही अपने पक्ष में पहले बोलने को कहा। हमारा तो क्योंकि खण्डनात्मक विपक्ष था, अतः हम बाद में पक्ष का खण्डन करेंगे। अतः पं. माधवाचार्य पहले बोले। हमने उनके पक्ष के खण्डनात्मक विपक्ष में वेद से अनेक मन्त्र ईश्वर के निराकार होने के समर्थन में प्रस्तुत किये। माधवाचार्य कोई उत्तर नहीं दे पाये। दो बिंदुओं पर पं. माधवाचार्य घिरे। पहला बिन्दु था कि मैंने पं. माधवाचार्य से संस्कृत में पूछा कि **"न तस्य प्रतिमा अस्ति" इति मन्त्रांश भवान् प्रमिनोति वानवेति?"।** "प्रमिनोति" शब्द सुनकर पं. माधवाचार्य घबराये, वे इस शब्द का अर्थ नहीं समझ पाये और पास में बैठे हुये दूसरे पण्डित से पूछने लगे कि यह ब्रह्मचारी क्या कह रहा है? मन्त्रांश तो था ही स्पष्ट उनके पक्ष के विरुद्ध प्रमाण। दूसरा बिन्दु था कि पं. माधवाचार्य अद्यतन भूतकाल में संस्कृत शब्दों का लङ्लकार में प्रयोग कर रहा था जबकि पाणिनि की अष्टाध्यायी के अनुसार अद्यतन भूतकाल में लङ्लकार का प्रयोग होना चाहिये, लङ्लकार का प्रयोग अनद्यतन प्रत्यक्ष भूतकाल में ही होना चाहिये। मैं अद्यतन भूत में लङ्लकार का ही प्रयोग करता था और यङन्त शब्दों की प्रसङ्गानुसार भरमार कर देता था। पं. माधवाचार्य न तो समझ पाते थे और न ही मेरे आक्षेपात्मक प्रश्नों का उत्तर दे पाते थे। अत्यंत संक्षेप में मैंने यहां यह लिखा है। व्याकरण की गुत्थियों को सामान्य पाठक नहीं समझ पायेंगे। और न ही लिख रहा। पं. माधवाचार्य अन्त में अपने समर्थकों को संकेत देकर उठकर चले गये। हम अपने स्थान पर जमे रहे। हमारे समर्थकों ने जयकार के नारों से वातावरण गुन्जायमान कर दिया। पं. शान्तिप्रकाश जी ने पीछे से मेरी पीठ थपकी, उनको किसी प्रकार के बोलने की नौबत ही मैंने नहीं आने दी। सभा की पत्रिका में उन दिनों यह समाचार कई बार छपा।

कई जिज्ञासुओं ने मुझे इस विषय की प्रामाणिक जानकारी देने को कहा अतः यह लेख लिखा है।

श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने शास्त्रार्थ महारथी पं. शान्ति प्रकाश जी का जीवनचरित छपवाया था। उसमें उन्होंने यह घटना सही रूप में नहीं दी, तिथियां तो पूर्णतः गलत दी हैं। मैंने उनको जब पत्र द्वारा इसकी सही जानकारी दी तो उन्होंने बड़े विनीत भाव से क्षमा मांगी और पुस्तक के अगले संस्करण में इसे ठीक करने की बात लिखी। यह उनकी सद्ग्राहृयता का प्रमाण है। प्रामाणिक खोज किये बिना **एक इतिहास** लेखक की भयङ्कर भूल!

भू.पू. संस्थापक एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
मो. 9811960640

श्री नुरुद्दीन का आर्यसमाज मानटाऊन में अभिनन्दन

आर्य समाज मानटाउन एवं महिला आर्य समाज सवाई माधोपुर (राज.) के संयक्त तत्त्वाधीन में चतुर्वेदशतकम् महायज्ञ एवं वेदज्ञान की संगीतमय अमृतवर्षा का भव्य आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ इस नगर की नवनिर्वाचित नगरसभापति (नगरपरिषद्) डॉ. विमलन शर्मा द्वारा ओ३म् ध्वजारोहण करके किया गया।

दैनिक यज्ञ व प्रवचन, उपदेश भजन एवं सम्मान समारोह तथा सायं वैदिक भजन एवं सम्मान समारोह तथा सायं वैदिक भजन संध्या का आयोजन किया गया। आयोजन में यज्ञ के आचार्य एवं वैदिक प्रवक्ता डॉ. कृष्णपाल सिंह जी जयपुर से पधारे और 21 यजमान दम्पत्तियों से यज्ञ में विधिपूर्वक वैदिक मंत्रों से आहुतियां दिलवाईं । बरेली (उत्तर प्रदेश) से पधारे श्री विमलदेव अग्नि होत्री एवं करनाल (हरियाणा) से पधारी बहिन सुश्री अंजली आर्या ने अपने सुमधुर भजनों की सरिता से सभी श्रोताओं का मनमोहलिया

कार्यक्रम के दौरान ग्राम जड़ावता निवासी मुसलमान भाई श्री नुरुद्दीन का भी अभिनन्दन किया गया, जो वेदों के प्रति स्वस्थय एवं तीव्र लगन होने के कारण वैदिक मंत्रों का स्वयं अर्थ करने में प्रयासरत हैं। इन्हें भगवद्गीता का, कम पढ़े–लिखे होन पर भी, अच्छा ज्ञान है। इनके अतिरिक्त मध्यप्रदेश से आये श्री रामप्रताप आर्य का उनके द्वारा वेद प्रचार समिति बड़ौदा को 5 बीघा जमीन लगभग 25–30 लाख की अनुमानित मूल्य की दान देने के लिए इस आर्य समाज द्वारा सम्मानित किया गया।

आचार्यपद रजत जयन्ती समारोह

प्राप्त विज्ञप्ति के अनुसार आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय नर्मदापुरम् होशंगाबाद में गुरुकुल के 108 वार्षिकोत्सव के अवसर पर पूज्य आचार्य जगद्देव नैष्ठिक जी (स्वामी ऋतस्पति जी परिव्राजक) के आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय नर्मदापुरम् होशंगाबाद के आचार्यपद को सुशोभित करने के 25 वर्ष होने के अवसर पर दि.27,28 एवं 29 नवम्बर 2015 को आचार्यपद रजत जयन्ती समारोह मनाया जा रहा है।

जानकारी हेतु 09424471288, 09907056726 पर सम्पर्क किया जा सकता है–

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– 'जीवात्मा' का स्थान मनुष्य 'शरीर' के अंदर कहाँ है?

समाधान– कठोपनिषद् में लिखा है, कि– 'हृदि ह्येष आत्मा' अर्थात् आत्मा हृदय में रहता है। लेकिन वो हमेशा एक जगह नहीं रहता। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर ऐसी चर्चा आती है। **जीवात्मा चौबीस घंटे एक जगह नहीं रहता, वो स्थान भी बदलता रहता है।** जैसे आप अपने घर में क्या एक ही कमरे में बैठे रहते है, बदलते रहते है न। कभी बेडरूम में चले गए, कभी किचन में चले गए, कभी बाथरूम में चले गए, कभी ड्राइंगरूम में चले गए। ऐसे ही यह शरीर जीवात्मा का घर है। वो जब इच्छा होती है, तो अपनी जगह बदल लेता हैं।

जीवात्मा के सोने के लिए लिखा है, कि हृदय में से बहुत सारी नाड़ियाँ निकलती है, उनमें से एक नाड़ी का नाम है– 'पुरीतत'। जब जीवात्मा सोता है, तो पुरीतत नाम की नाड़ी में जाकर सोता है, यह उसका बेडरूम है। एक उपनिषद्, है– "ऐतरेय" उपनिषद् उसमें जीवात्मा के स्थान की चर्चा आई है। उसमें एक वाक्य लिखा है– 'त्रयः आवसथाः' अर्थात् जीवात्मा के शरीर में निवास के तीन स्थान हैं– 'त्रयः' तीन। फिर आगे लिखा है– 'अयं आवसथ, अयं आवसथ, अयं आवसथ।' इसका मतलब होता है–यह स्थान है, यह स्थान है और यह स्थान है। अब कौन सा स्थान है, उसका नाम तो लिखा नहीं । दरअसल, विद्यार्थियों को कोई गुरूजी पढ़ा रहे होंगे, जैसे अब आप मेरे सामने बैठे हैं। और मैं कहूँ देखो, जीवात्मा शरीर में तीन जगह रहता है, एक यहाँ रहता है, एक यहाँ रहता है, और यह यहाँ रहता है । अब मैंने ऐसे इशारे से बता दिया और नाम नहीं बोला, तो किसी लिखने वाले ने यूँ लिख दिया, कि– यहाँ रहता है, यहाँ रहता है, यहाँ रहता है। अब भई ! सामने दिखता हो तो समझ भी जाए, किताब में लिखने से क्या पता चले, कि कहाँ रहता है? 'यहाँ' का मतलब क्या ? इसलिए पता नहीं चला, कहाँ रहता है। कहाँ रहता है। पर तीन जगह लिखा है, यह तो स्पष्ट है। तीन जगह कौन सी ? यह स्पष्ट नहीं है।

जीवात्मा के तीन अलग–अलग स्थान हैं। जाग्रत में जीवात्मा कहीं और होता है, स्वप्न में कहीं और होता है, सुषुप्ति में कहीं और होता है। मतलब स्थान बदलता रहता है। इतनी बात तो स्पष्ट है।

एक उपनिषद् है– 'ब्रह्मोपनिषद्'। वैसे तो वो प्रमाणिक उपनिषद् नहीं है। पर कुछ लोग दूसरे उपनिषदों को भी पढ़ लेते है। कुछ अच्छी बातें वहाँ भी मिल जाती है। 'ब्रह्मोपनिषद' में एक जगह पर आत्मा के तीन स्थान बताए गए– एक नेत्र, एक कंठ, और एक हृदय। ये तीन स्थान उसमें नामपूर्वक लिखें है। वैसे प्रमाणिक तो नहीं है, फिर भी हो सकता है, वो भी अनुकूल हो। इसलिए कुछ कह नहीं सकते, लेकिन जीवात्मा जगह बदलता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

शंका– आत्मा के संयोग से 'जड़–शरीर' चेतन लगता है। 'चेतन–ईश्वर' जड़ पदार्थों, जैसे कि–दीवार, पत्थर आदि में है, तो ये चेतन क्यों नहीं दिखते ?

समाधान– जड़ वस्तु स्वयं क्रिया नहीं करती। शरीर जड़ है, वो स्वय हिलता–डुलता, चलता–फिरता नहीं है। जब 'आत्मा' शरीर में जाता है, तब चेतन आत्मा की प्रेरणा से शरीर क्रिया करता है। ऐसे ही दीवार के परमाणुओं में क्रिया हो रही है। सब जगह परमाणु (एटम) घुम रहें हैं। एटम कौन घूमा रहा है ? ईश्वर। ईश्वर के संयोग से वहाँ भी क्रिया हो रही है। अनार में हो रही है, केले के अंदर हो रही है, हर वस्तु में हो रही है। जितने एटम्स घूम रहे है, उन्हें तो ईश्वर घूमा रहा है। लेकिन जैसे शरीर में हाथ हिलता दिखता है, वैसे दीवार हिलती नहीं दिखती। दीवार हिलती, तो सभी भाग जाते। सोचते कि– कहीं वो हमारे सिर पर न गिर जाये। इसलिए वो ऐसी हिलती हुई नहीं दिखती, चुपचाप स्थिर है। लेकिन उसके अंदर क्रिया होती है। सूर्य में, पृथ्वी में, चाँद में, तारो में, यानि हर वस्तु में ऐसी क्रिया हो रही है। और वो क्रिया चेतन ईश्वर के संयोग से है। चेतन–ईश्वर उसमें क्रिया करता है। वस्तुतः हर वस्तु क्रियाशील है। एक साइंटिस्ट से पूछिये– वो बताएगा, कि क्या क्रिया हो रही है। सेव में, केले में क्रिया होती है। सेव रखा–रखा सड़ जाता है। आपको हिलता तो नहीं दिखता, मगर सड़ जाता है। ऐसा इसलिये, क्योंकि इसके परमाणुओं में सूक्ष्म–रूप से आंतरिक क्रिया होती है। इलेक्ट्रॉन्स घूमते रहते हैं, एटम्स सारे घूमते रहते हैं, जिसके कारण उसमें वृद्धि– ह्रास होता रहता है। सेव, केले में यह क्रिया तीव्र होती है। सेव, केला दो–तीन दिन में सड़ जाएगा। दीवार में ये क्रिया उतनी तीव्र नहीं होती, उससे बहुत कम होती है। दीवार को टूटने में सौ–दो सौ साल लग जाते हैं। इसमें ज्यादा समय लगता है। प्रत्येक पत्थर, दीवार आदि पदार्थों में गति क्रिया होने के कारण ही वे पदार्थ भी चेतन ईश्वर के कारण चलने फिरने लगें, (जैसे–आत्मा के कारण शरीर चलता फिरता है) तो व्यवहार करना कठिन हो जाएगा। क्योंकि ईश्वर तो सभी वस्तुओं में है। तब सभी चीजें चलने लगेगी। तो आप अपना सामान=(रुपये, सोना, चाँदी, बर्तन, बिस्तर आदि) जहाँ रखकर ऑफिस जाएँगे। और जब शाम को ऑफिस से लौटकर आयेंगे, तब आपका सामान आपको वहाँ मिलेगा नहीं, जहाँ आप रखकर गये थे। सुबह से शाम तक आपका मकान =(घर) भी 5–7 किलोमीटर दूर चला गया होगा। तब बताइये, आपका जीवन–व्यवहार कैसे चल पाएगा।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

साप्ताहिक सत्संग में डी.ए.वी. स्कूल पलवल के श्री योगेश भारद्वाज (कक्षा 10) द्वारा प्रस्तुत भाषण

आदरणीय प्रधान जी, मंत्री जी, निर्देशिका महोदया उपस्थित सभी आर्यसज्जन, प्रिय गुरुजन, एव मेरे छोटे एवं बड़े भाइयो बहनों।

आज मैं आपको आर्य समाज के इस पवित्र मंत्र से यह बताना चाहता हूँ कि धर्म क्या है। **धर्मेण हीना पशुभिः समाना**, धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान होता है। किंतु आज तक हम यह नहीं जान पाए कि धर्म क्या है? कोई कहता है कि तिलक लगाना धर्म है, कोई कहता है दाढ़ी बढ़ाना धर्म है, कोई कहता है कि अमृत चखना धर्म है, कोई कहता है कि बप्तीस्मा धारण करना धर्म है, कोई कहता है कि धर्म एक है तो कोई कहता है धर्म अनेक। आज इसी भ्रम में भटकी हुई दुनिया कभी उलेमाओं की शरण में जाती है तो कभी गुरुओं की शरण में जाती है। दोस्तो, वेद कहता है कि धर्म एक है और वह सबका सच्चा मित्र है। महर्षि मनु ने कहा है जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। आज हम यह जानें कि महर्षि मनु ने धर्म के लिए क्या कहा है। उनके अनुसार धीरज रखना, क्षमाशील होना, मन पर काबू रखना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, विद्वान होना, बुद्धिमान होना धर्म है। इन बातों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूजा करने और नमाज पढ़ने का सबंध धर्म से नहीं है। यह तो मात्र आचरण की चीजें हैं। महर्षि दयानन्द ने कहा है कि हे मनुष्यो! अपना धर्म उसे मानो जिसका कोई विरोध ना करता हो। जिसे हर कोई मानता हो। जब मैं इन बातों को लेकर विश्व के कोने–कोने में जाता हूँ तब मैं लोगों से पूछता हूँ कि भाई इन बातों में से ऐसी कौन–सी बात है तब मुझे एक स्वर में उत्तर प्राप्त होता है कि भाई इन 10 बातों में से ऐसी कोई सी बात है ही नहीं जिसका विरोध किया जा सके। तब मैं उन ऋषियों को नमन करते हुए कहता हूँ अगर ऋषियों की बातों पर जमाना चल गया होता तो जहालत मिट गई होती हमें रोना न होता। और आज जो ये ऋषियों की संतानें धर्म के नाम पर मजहब पंत संप्रदाय में बँटी फिर रही है, भाई–भाई का दुश्मन बना हुआ है। मज़हब फिरका परस्ति में आकर हम धर्म के नाम पर बेगुनाहों के खून से खेलते हैं और यह कहते हैं कि हमारा धर्म हमें इजाज़त देता है कत्ल करने का और उनके रहबर गाते फिरते हैं कि मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।

आज मैं इस विशाल मंच से उन्हें आगाह करना चाहता हूँ कि मज़हब, पंथ, सम्प्रदाय को छोड़कर धर्म की शरण में आइए, धर्म किसी को तोड़ता नहीं हमेशा जोड़ता है। अतः हमें वो व्यवहार करना चाहिए, जिसकी धर्म हमें इजाज़त देता है। धर्म कहता है कि हे मानव, तुम वैसा व्यवहार दूसरों के साथ करो, जैसा तुम अपने लिए चाहते हो। क्योंकि परमात्मा कहता है कि सभी को मित्रता की दृष्टि से देखो, सभी आपके मित्र हैं, यही धर्म है।

ओम–शम्

कक्षा 10
डी.ए.वी. स्कूल, पलवल

दयानन्द वाङ्मय पर्यालोचन

● डॉ. प्रमा शास्त्री

स्वामी दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी, संस्कृत का उन्होंने विशेष अध्ययन किया था। 1846 ई. में उन्होंने गृहत्याग कर दिया था, तब उनकी अवस्था 22वें वर्ष की थी। 1860 ई. में वेद और आर्ष ग्रन्थों, विशेषतः अष्टाध्यायी–महाभाष्य–निरुक्तादि ग्रन्थों के अध्ययन के लिए 81 वर्षीय प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द दण्डी के चरणों में मथुरा पहुँचे। वहाँ लगभग 2–1/2 वर्ष (ढाई वर्ष) अध्ययन करके 1863 में कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए। स्वामी दयानन्द के जीवन–चरित से यह विदित होता है कि 1846 ई. से 1874 ई. से पूर्व तक (28 वर्षों तक) उनके व्यवहार की भाषा संस्कृत थी। यद्यपि इतने वर्षों में मध्य, उत्तरी तथा पूर्वी भारत में परिभ्रमण के दौरान उस काल की जन भाषाओं से उनका सामान्य परिचय हुआ होगा। ब्रजभाषा से परिचित भी हुये होंगे। 1863 से 1883 ई. में निर्वाण प्राप्त करने तक 20 वर्ष के कार्यकाल में प्रारम्भिक 1863 से 1873 ई. तक 10 दस वर्षों में वे केवल कौपीनमात्रधारी निःसंग होकर परमहंसावस्था में ही विचरते रहे। इन प्रारम्भिक 10 दस वर्षों में वे केवल संस्कृत भाषा में ही उपदेश देते रहें। उनकी संस्कृत अत्यन्त सरल और सुललित होती थी, और संस्कृत भाषा में ही 4–5 छोटे–छोटे ग्रन्थ उन्होंने आरम्भिक वर्षों में प्रकाशित किये। बोल–चाल की भाषा ब्रजभाषा की कौन कहे उनकी मातृभाषा गुजराती में भी एक–दो पृष्ठ उनके लिखे हुए नहीं मिलते।

स्वामीजी को 1873 ई. कलकत्ता में बाबू केशवचन्द्र सेन ने संस्कृत के स्थान पर हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने का परामर्श दिया। इसके साथ ही केशवचन्द्रसेन तथा पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्वामीजी को वस्त्रधारण करने का भी परामर्श दिया। स्वामीजी ने दोनों परामर्शों को स्वीकर कर लिया। वस्त्रधारण के पश्चात् 'भाषा' (हिन्दी) में व्याख्यान देने का शुभारम्भ स्वामीजी ने सर्वप्रथम काशी में मई 1874 ई. में किया। 'भाषा' में बोलने का जब स्वामीजी ने दृढ़ निश्चय किया तब अनेक सुधीजनों ने टोका कि "आप ऐसा न करें, परन्तु स्वामीजी नहीं माने और कहा कि जब हम किसी को कुछ समझाते हैं तो संस्कृत में होने के कारण पण्डितगण साधारण लोगों को उसका उल्टा ही समझा दिया करते हैं। इसलिए अब हम 'भाषा' में ही बोलेंगे। प्रारम्भ में सैकड़ों शब्द ही नहीं, प्रत्युत वाक्य के वाक्य संस्कृत में बोल जाते थे। क्योंकि 'भाषा' (हिन्दी) बोलने और लिखने का अभ्यास नहीं था। "[1] बाद में धीरे–धीरे स्वामीजी की हिन्दी जिसे वे 'आर्यभाषा' कहते थे' अत्यन्त ही परिमार्जित, परिशुद्ध, प्रवाहमयी और मुहावरेदार हो गई। हिन्दी में लिखा हुआ उनका पहला महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सत्यार्थ–प्रकाश' 1874 ई. में काशी से छपा। इस शोधलेख में स्वामी दयानन्द की वेदविषयक रचनाओं की विवेचना की जाएगी। स्वामीजी के व्यावहारिक तथा शास्त्रीय विषयों पर संस्कृत और हिन्दी में लिखे गये ग्रन्थों की संख्या 25 (पच्चीस) है, तथा अपने निरीक्षण में तैयार कराये ग्रन्थों की संख्या 35 (पैंतीस) है। शास्त्रीय विषयों पर स्वामी दयानन्द लिखित ग्रन्थों को हम मोटे तौर पर 5 (पाँच) भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) वेदभाष्य और वेद विषयक
(2) धर्मशास्त्र विषयक
(3) दर्शनशास्त्र विषयक
(4) व्याकरणशास्त्र विषयक
(5) कर्मकाण्ड अथवा कल्पशास्त्र विषयक

वेदभाष्य और वेदविषयक

(1) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका–

प्राचीन ऋषियों द्वारा सम्मत जिन मूलभूत सिद्धान्तों को आधार बनाकर स्वामीजी ने जिस वेदभाष्य का उपक्रम किया, उन सभी सिद्धान्तों को इस पुस्तक में विस्तार से लिखा गया है। स्वामीजी की वेदविषयक सभी मान्याताएँ इस ग्रन्थ में समाविष्ट हो गई हैं। वेदोत्पत्ति, वेद नित्यत्व, वेद–संज्ञा जैसे विषयों की विवेचना के पश्चात् वेद में ब्रह्मविद्या, सृष्टि विद्या, उपासना विद्या पृथिव्यादिलोक–भ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्याप्रकाश्य, गणित, नौविमान, तार विद्या, वैद्यकशास्त्र आदि विषयों पर भी स्वामीजी ने वेदमन्त्रों के आधार पर अपनी ऊहा और शास्त्रीय पाण्डित्य से अच्छी विवेचना की है। वेदभाष्य में उपयोगी व्याकरण नियम, स्वर व्यवस्था, वैदिक अलंकार तथा ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य जैसे कठिन विषय भी इस ग्रन्थ में विवेचित हुए हैं। निश्चित रूप से इन उपयोगी विषयों और आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की चर्चा प्राचीन सायण–महीधरादि के भाष्यभूमिका तथा वेदभाष्यों में नहीं मिलती। इस ग्रन्थ की संस्कृत अत्यन्त सरल, प्रसादगुणोपेत तथा प्रसन्न गम्भीर शैली युक्त है, जो स्वामीजी के संस्कृत लेखन की विशेषता है। यह ग्रन्थ संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में है। भाषानुवाद कहीं–कहीं मूल से अधिक और कहीं–कहीं अत्यन्त संक्षित भी है। इस ग्रन्थ का गुजराती, मराठी, बंगला, उड़िया, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, अंग्रेजी तथा उर्दू आदि भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।[2] ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य पहले–पहल अंको के रूप में छपते थे अतः वेदभाष्य की 'भूमिका' नामक यह ग्रन्थ कुल 16 अंकों में संवत् 1934–35 में प्रकाशित हुआ। 1 से लेकर 14 अंक लाजरस प्रेस काशी से तथा 15 और 16 वाँ अंक निर्णय सागर मुम्बई से मुद्रित हुआ।[3] प्रो. मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्दजी सरस्वती की इस महत्वपूर्ण कृति के विषय में लिखा है–"ऋग्वेदकाल से आरम्भ करके दयानन्द द्वारा सम्पादित ऋग्वेदभाष्य की भूमिका लिखे जाने के समय तक के साहित्य को दो भागों में बाट सकते हैं। यहाँ यह भी बता देना समुचित ही होगा कि दयानन्द द्वारा लिखी गई ऋग्वेद की भूमिका भी कम रुचिपूर्ण नहीं है। "[4]

(2) वेदभाष्य का नमूना (सवंत् 1931)

स्वामीजी ने अपने करिष्यमाण वेदभाष्य का स्वरूप जनता पर प्रकट करने के लिए ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का भाष्य नमूने के रूप में प्रकाशित किया। इसमें ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का भाष्य था। भाष्य संस्कृत में था तथा इसका गुजराती और मराठी अनुवाद भी था। प्रथम सूक्त में 'अग्निमीळे पुरोहितम्..' आदि 9 नौ मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्र के दो अर्थ थे एक भौतिक दूसरा पारमार्थिक। उसकी भूमिका में लिखा था कि 'मैं **सारे वेदों का शैली पर भाष्य करूँगा।** यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो पहले ही सूचित कर दे, ताकि मैं उसका खण्डन करके ही भाष्य करूँ। 'यह नमूना स्वामीजी ने काशी के पण्डित बालशास्त्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता और अन्य स्थानों के पण्डितों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने भी उसकी आलोचना नही की।[5] नमूने का यह अंक अब उपलब्ध नहीं होता। ऋषि दयानन्द के पत्रों के अन्वेषक तथा संग्रहकर्त्ता श्री मामराजजी के संग्रह में यह ट्रैक्ट था तथा इसका मूल्य एक आना था। इसका मुद्रण संवत् 1931 में कार्तिक के मध्य तक हो गया था।[6]

(3) चतुर्वेद–विषय–सूची (संवत् 1933)

ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य रचने से पूर्व चारों वेदों का गहन आलोड़न करके वेदों के प्रतिपाद्य विषयों की सूची तैयार की थी। यह सूची प्रत्येक वर्ग, दशति, सूक्त वा अध्यायस्थ मन्त्रों के विषयों के क्रमशः संकलन के रूप में थी। निष्कर्षतः करिष्यमाण चारों वेदों के भाष्य का यह प्रारूप है, यद्यपि ऋषि ने वेदों का भाष्य करते समय इस प्रारूप में यत्र–तत्र परिवर्तन भी कर दिया है, तथापि इसकी उपयोगिता अक्षुण्ण है। विशेषतः सामवेद, अथर्ववेद तथा ऋग्वेद के के अंश जहाँ स्वामीजी का भाष्य नही मिलता, के तात्पर्य–ज्ञान में यह सूची अत्युपयोगी है। पर्याप्त काल तक यह प्रकाश में नहीं आ पाई। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं. युधिष्ठिर मीमांसक तथा आचार्य विश्वश्रवाः जी के ब्रहुप्रयास के अनन्तर 2028 वि. संवत् में परोपकारिणी सभा ने इसे प्रकाशित किया। पाठ–शुद्धता की दृष्टि से इस पुस्तक का पं. युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित पाठ (दयानन्दीय–लघु ग्रन्थ संग्रह के अन्तर्गत आर्यसमाज शताब्दी संस्करण (1975 ई.) समीचीन है। मीमांसकजी का यह निष्कर्ष है कि ऋषि ने इस सूची का संकलन आर्याभिविनय, सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के प्रथम संस्करणों के लिखने से पूर्व कर लिया था।[7]

(4) वेदभाष्य का दूसरा नमूना (संवत् 1933)

स्वामीजी ने वेदभाष्य के दूसरे नमूने का यह अंक संवत् 1933 के पौष मास में काशी के लाजरस प्रेस से छपवाया। 20×26 अठपेजी आकार के 24 पृष्ठों का यह अंक था। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त और द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का संस्कृत भाष्य छपा है। प्रत्येक मन्त्र के भौतिक और पारमार्थिक दो–दो प्रकार के अर्थ दर्शाये हैं। वेद में अग्नि शब्द ईश्वर का वाचक है, इसकी पुष्टि में वेद से लेकर मैत्रायणी उपनिषद् तक अनेक आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत किये गये हैं, जो देखते ही बनते है। प्रमाण अपने आप में इतने प्रबल हैं कि यदि प्रतिपक्षी हठधर्मिता वा पक्षपात को छोड़कर विचार करे, तो उसे मानना पड़ेगा कि वेद में 'अग्नि' शब्द का अर्थ ईश्वर भी है।

(5) भ्रान्तिनिवारण (संवत् 1934, कार्तिक शु. 2 में लिखित)

स्वामीजी के 'वेदभाष्य के नमूने का अंक' सम्मति प्राप्त करने के लिए विद्वानों को भेजे गये थे। अनार्ष ग्रन्थों के अध्ययनाध्यापन की परम्परा और योरोपीय विद्वानों के प्रभाव के कारण पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न (स्थानापन्न प्राचार्य संस्कृत कॉलेज कलकत्ता) ने इस पर जो पुस्तक लिखी, वह स्वामीजी के विरुद्ध थी। इस पुस्तक में ही न्यायरत्नजी के समानधर्मा मि. ग्रिफिथ, सी.एच. टानी, पं. गुरुप्रसाद, पं. हृषीकेश, पं. भगवानदीन, पं. गोविन्दराम तथा पं. शिवनारायण अग्निहोत्री आदि विद्वानों के आक्षेपों का समाहार हो जाता है। इसलिए ऋषि दयानन्द ने इसके खण्डन में सं. 1934 में 'भ्रान्तिनिवारण' पुस्तक लिखी। यह पुस्तक लघुकाय होते हुए भी स्वामीजी की वेद व्याख्या की आर्ष पद्धति के महत्त्व को रेखाङ्कित करती है तथा वेदार्थ–जिज्ञासुओं के लिए इसकी उपयोगिता निस्सन्दिग्ध है। 'भ्रान्ति निवारण' पुस्तक में ही ऋषि का वह प्रसिद्ध वचन है जिससे उनकी बहुश्रुतता और आर्ष–प्रतिभा परिलक्षित होती है–"क्योंकि मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन

शेष पृष्ठ 11 पर

आर्यों का तुष्टीकरण दयानन्द की हार

● आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

नर नारी दोनों का अनादि सृष्टि काल से धरती पर अस्तित्व है। ईश्वर ने दोनों के लिए प्रवाह रूप से समानता का अधिकार प्रदान किया है। ईश्वरीय ज्ञान वेद में पुमान् को **ओजस्वान्** (अथर्व. 8/5/4)ओज वाला कहा है, तो वेद में स्त्री को भी **ओजस्वती,** (यजु. 10/3) ओज वाली कहा है। इसी प्रकार वेद में पुमान् को **सहीयान्, (ऋ. 1/61/7)** अत्यन्त बल वाला, **सम्राट्, (ऋ. 2/28/6** शासक, **सभासद:**(अथर्व 20/21/3) सभाओं का अधिकारी आदि कहा है, तो उसी प्रकार वेद में स्त्री को भी **सहीयसी,** (अथर्व 10/5/43) अत्यन्त बलशाली, सम्राज्ञी, (ऋ. 1/85/64) शासिका. **सभासदा** (अथर्व. 8/8/9) सभाओं की अधिकारिणी आदि कहा है।

ईश्वरीय व्यवस्थानुसार जीवन के उपदेश निर्देशों में कहीं पर भी ऊँच नीच का भाव नहीं है, स्त्री पुमान् दोनों को समानरूप से आधिकारिक सामर्थ्य प्राप्त है। पर मध्यकाल में वेदज्ञान से शून्य अहमन्य पुमान् समाज ने स्त्री जाति का अपने को शासक मान लिया, और स्त्री समाज को शास्य समझ लिया। सम्पुष्टि में **धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु** सदृश ग्रन्थों में नारी जाति के लिए अनेक व्यवस्थायें, धर्मादेश लिख डाले। जिसके चलते **स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति** श्रुति:, **ढोलगवारशूद्रपशुनारी ये सब ताड़न के अधिकारी, द्वारं किमेकं नरकस्य** नारी सदृश अनेक प्रवादवाक्य समाज में प्रचलित हो गये। जिन प्रवादों ने नारी जाति से समस्त धर्म, कर्म, विद्या, वेद, सभा आदि के अधिकार एवं मन्त्र आदि के पढ़ने पढ़ाने के श्रेष्ठ कार्य छीन लिये।

19वीं शताब्दी में स्त्री जाति के सम्मानकर्ता महर्षि दयानन्द ने वेद के माध्यम से **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य:।** (यजु. 26/2) अर्थात् परमपिता परमात्मा ने **जनेभ्य:=** जन जन स्त्री पुमान् सभी के लिए समानरूप से कल्याणकारिणी वेदवाणी प्रदान की है, यह उद्घोष किया। अन्यच्च पुमान् के सदृश नारियों को अध्ययन, यज्ञ कराने वाले एवं सभासद आदि बन सकती हैं आदि सप्रमाण कथन किया।

महर्षि की इस उद्घोषणा से एवं उनके प्रयत्न से नारी जाति को पठन पाठन के आदि के अधिकार प्राप्त हुए। नारियाँ मन्त्री, मुख्यमन्त्री, प्रधानमन्त्री, राज्यपाल, राष्ट्रपति, आचार्या, प्राचार्या आदि पदों पर प्रतिष्ठित हुईं।

पर खेदावह यह है कि इन पदों पर प्रतिष्ठित होने पर भी स्त्री जाति की वह स्थिति आज भी स्वीकार नहीं हो पाई है, जिस स्थिति की महर्षि दयानन्द ने कल्पना की थी एवं प्रयत्न किया था। आज भी वेदविरुद्ध मत मतान्तरों की भीड़ को बढ़ाने वाले अनेकों जाति ब्राह्मण, साधु, सन्त, महन्त, जन हैं जो स्त्री जाति की न उन्नति चाहते हैं और न उच्च पदों पर देखना चाहते हैं। इतना ही नहीं वे कूपमण्डूक जन स्त्रीजाति के समक्ष न मन्त्र बोलना चाहते हैं, स्त्रीजाति को बोलने का अवसर देना चाहते हैं एवं न स्त्री जाति को समक्ष बैठे देखना चाहते हैं, सामने से हटाने का निर्देश तक देते रहते हैं।

इस कुत्सित मानसिकता वालों में स्वामी नारायण के साधु भी अग्रसर हैं। इनकी बहुत बड़ी विडम्बना है कि ये साधु पुमानों की भाँति स्त्री जाति को अपने धर्म में दीक्षित करते हैं, अपने मत को बढ़ाने में उनका सहयोग लेते हैं। नारियाँ इनका सहयोग कर सकें अतः वस्त्र भेज भेजकर अपने रंग में रंगते हैं। **सभी को विदित हो कि यह स्वामी नारायण मत वही मत है जिसकी उत्पत्ति एवं आडम्बर कार्यों की पोल महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में खोली है।**

सत्यार्थप्रकाशः एकादशसमुल्लासः पृ. 352–357।।

इस मत की यह भी विडम्बना है कि महर्षि दयानन्द के जीवन का अनुकरण करके अपने मत उद्भावक को महान् बनाया हुआ है। वह महत्ता अक्षरधाम मन्दिरों में दिखाई जा रही है।

इस मत का उद्भावक अयोध्या जनपद के ग्राम का सहजानन्द हुआ। जिसे नारायण का अवतार एवं सिद्ध माना गया। इस मत का प्रचारक दादाखाचर भी बना। वर्तमान में इस मत के बड़ी संख्या में साधु सन्त हैं। इस मत के प्रचार प्रसार के साधन यत्र तत्र बने अक्षरधाम मन्दिर हैं। दिल्ली अक्षरधाम मन्दिर के अध्यक्ष वर्तमान में भद्रेश साधु हैं।

ये भद्रेश साधु जहाँ कहीं भी जाते हैं, वहाँ वे स्त्री जाति को सामने बैठने से निषेध करते हैं। ऐसी ही एक घटना अभी 18/3/2015 को हुई। **गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार** परिसर के मध्य **गुरुकुल के प्राच्यविद्या संकाय विभाग** एवं **महर्षि सांदीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन** म. प्र. के संयुक्त तत्वावधान में 13–14 मार्च 2015 तक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी संगोष्ठी आयोजित हुई। गोष्ठी का विषय था **वैश्विक ज्ञान विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में वेदों की प्रासंगिकता।** गोष्ठी के आयोजन के सचिव प्रो. **दिनेशचन्द्र शास्त्री** गुरुकुल कांगड़ी प्राच्यविद्या संकाय के संस्कृत विभागाध्यक्ष थे। उन्होंने आर्य जगत् के विद्वानों को भी निमन्त्रित किया, उनमें मुझे भी अतिआग्रह से आमन्त्रित किया। गोष्ठी का समापन 15/3/2015 को था। समापन समारोह में **स्वामी सुमेधानन्द जी** सांसद, **मन्त्री शशांक, गुरुकुल कांगड़ी के कुलपति** महोदय, संकायाध्यक्ष **प्रो. सोमदेव शतांशु, प्रो. रूपकिशोर शास्त्री,** सचिव **वेदविद्या प्रतिष्ठान** उज्जैन के साथ स्वामी नारायण मत के **साधु भद्रेश भी आमन्त्रित थे।**

घटना

15/3/2015 की प्रातः प्रतिदिन की भाँति नीचे तल पर गोष्ठी का अन्तिम सत्र चल रहा था। जहाँ **प्रो. सोमदेव शतांशु के समीप मैं भी बैठी थी।** लगभग 11.30 बजे **प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री सत्र के मध्य आये,** संयोजक से कुछ कहा, ततः मेरे कान में कहा– **बहन जी आपका सम्मान करना है आपको ऊपर मुख्य आयोजन स्थल पर सामने की प्रथम पंक्ति पर बैठना।** नीचे सत्र समाप्ति के पश्चात जब मैं ऊपर समापन स्थल पर पहुँची, जहाँ पूर्व से प्रथम पंक्ति में **डॉ. धर्मवीर, डॉ. वेदपाल** एवं हैदराबाद के वेदालंकार भाई बैठे थे। मैं उन वेदालंकार भ्राता जी के समीप प्रथम पंक्ति में बैठ गई। ततः डॉ **वेदकुमारी घई** विश्वविद्यालय **जम्मू** भी मेरे साथ प्रथम पंक्ति में बैठ गई। प्रथम व्यक्ति की बाईं ओर पंक्ति में **सुनीता जायसवाल** एवं एक अन्य बहन बैठ गई, और भी जन सामने बैठ गये। अभी तक भद्रेश साधु एवं अन्य विशिष्ट जन समापन के कर्ता धर्ता कार्यस्थल पर पधारे नहीं थे। लगभग 12.10 बजे **श्रीकान्त शास्त्री पतञ्जलि योगपीठ** इन युवक भाई ने पंक्ति के बाईं ओर बैठी हुई दोनों बहनों को पीछे बैठने का निर्देश दिया और वे पीछे चली भी गईं। ततः वे भाई मेरे समीप आये और कहा कि आप प्रो. **सोमदेव शतांशु** के पीछे बैठ जाइये, उस समय शतांशु जी चौथी पंक्ति में बैठे थे। मैंने उस भाई से प्रश्न किया, क्यों? उनका उत्तर था, दिनेशचन्द्र शास्त्री ने कहा है। मैंने पुनः कहा यहाँ मुझे बिठाया ही उन्होंने है, जाकर उनसे ही पूछो। वे शास्त्री युवक गये, पुनः आये और कहा भद्रेश साधु का निर्देश है कि सामने कोई महिला नहीं होनी चाहिए, अतः दिनेशचन्द्र जी ने पीछे बैठने को कहा है।

उनकी बात सुनकर मैंने कहा– यह आर्यसमाज की संस्था है अब तो मैं और भी नहीं उठूँगी, वे कहने लगे– इन घई माताजी को भी तो पीछे कर रहे हैं। मैंने पुनः कहा, यहाँ पीछे जाने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न आर्य सिद्धान्त का है, मैं तो इस बात पर [illegible] करूँगी, मैं सरकारी रोटी नहीं खाती [illegible] आर्य परिसर में ऐसा क्यों होगा? [illegible] आयोजन के सचिव **प्रो. दिनेशचन्द्र** शास्त्री एवं उज्जैन के सचिव **प्रो. रूपकिशोर शास्त्री** दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो [illegible] आप हमारी बहन हैं हमारी बात समझें [illegible] आपका सम्मान करेंगे, आदि आदि [illegible] किये और **प्रो. रूपकिशोर शास्त्री** [illegible] मुझे और घई जी को सामने से उठाकर प्रथम पंक्ति की बाईं ओर जहाँ से दो बहिनें उठायीं गई थीं, वहाँ पर बिठा दिया। [illegible] उन्हें कहा मैं आपका सम्मान नहीं लूँगी।

यह वाद विवाद के कुछ काल पश्चात् समारोह के सभी विशिष्ट जन **आ गये,** भद्रेश साधु भी पहुँच गये। स्वागत **में वे**[illegible] हुआ, वेदपाठ दक्षिणात्य एक **पं. भाई ने** तथा **श्रीमती जाह्नवी पतञ्जलि योगपीठ** ने किया। वेदपाठ के अनन्तर श्रीमती जाह्नवी सामने से जाने लगीं, तो पुनः प्रो. रूपकिशोर जी ने इशारा किया कि इधर से न [illegible] उधर से जायें।

अब भला विचारिये कि आर्य विद्वानों द्वारा की गई ये घटनायें क्या निर्देश कर रही हैं? इन घटनाओं से यही सुस्पष्ट हो रहा [illegible] कि आर्य विद्वान सरकारी पदों पर जा[illegible] सब कुछ करते हुए भी जहाँ सिद्धान्त की बात आती है, वहाँ वे तुष्टीकरण को महत्त्व देते हैं, सिद्धान्त को नहीं।

आर्य समाज अपने को स्त्री पुरुष दोनों को समान अधिकार देने का पक्षधर कहता है। पुनः भद्रेश साधु की आज्ञा को स्वीकार कर हम बहनों को सामने से उठने का कथा निर्देश देने का साहस कर डाला? यदि कोई कहे कि विशिष्ट जनों को बिठाना था, तो प्रथम पंक्ति में अनेक पुमान भाई बैठे थे, तो उन पुमान भाइयों में से क्यों नहीं उठाया किसी को?

इन अभद्र घटनाओं में किसी भी हेतु का देना व्यर्थ होगा, क्योंकि आधे घण्टे पूर्व तो प्रो. दिनेशचन्द्र शास्त्री जो आयोजन सचिव मुझे आगे की पंक्ति में बैठने को कहते हैं, आधे घण्टे पश्चात् भद्रेश साधु के निर्देशानुसार पीछे बैठने को कहा जा रहा है। यह मात्र तुष्टीकरण के कारण ही तो किया गया।

स्त्रियों को पीछे बैठने की बात [illegible] नव. 2012 में महर्षि सान्दीपनी राष्ट्रीय **वेदविद्या प्रतिष्ठान** द्वारा आयोजित द्वितीय **विश्व वेद सम्मेलन कार्यक्रम** [illegible] थी। यह घटना दूरभाष द्वारा एक [illegible]

शेष पृष्ठ 11 पर

स्व की पहचान

● राज कुकरेजा

स्व के प्रति एक मिथ्या धारणा है कि सुख और दु:ख का आश्रय अन्यों पर आधारित है। हम परिस्थितियों को व दूसरों को सदैव अपने ही अनुकूल बनाना चाहते हैं जो असम्भव है, इस श्लोक द्वारा स्पष्ट किया गया हैं।

सर्वप्रथम हम स्वयं को जाने, हम में अधिकांश तो स्वयं की पहचान नहीं रखते है यदि जानते हैं तो ठीक रूप में व्यवहार नही कर पाते हैं। प्रश्न उठता है कि मैं हूँ कौन, कहाँ जाना हैं आध्यात्मिक स्तर पर चिन्तन ही इस का समाधान कर सकता है। मैं एक आत्मा हूँ, मैं कहीं से नहीं आया और मुझे जाना भी कहीं, नहीं है, मैं अजर–अमर हूँ मैं अनादि काल से हूँ, और अनादि काल तक रहूँगा, न मैं जन्म लेता हूँ, न ही मैं मरता हूँ, मरता तो मेरा शरीर है। यह शरीर मुझ जीव को अपने अच्छे और बुरे कर्मो के फलस्वरूप ईश्वर ही अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार प्रदान करता है, शरीर के साथ मुझ आत्मा का संयोग करता हैं मैं वैसा ही दिखने लगता हूँ शरीर मेरी सासारिक यात्रा में साधन है, शरीर, मन, इन्द्रियां और प्राण जड़ हैं, मैं चेतन आत्मा ही इन सब का स्वामी हूँ।

इन सब साधनों में मन अति सूक्ष्म तथा शक्तिशाली साधन है। आत्मा के अति निकट इस का वास है और आत्मा से चैतन्य प्रभाव को ग्रहण करके चेतन की भांति कर्म करना आरम्भ कर देता है। मन ज्ञान इन्द्रियों द्वारा बाहय जगत का ज्ञान प्राप्त कर कर्म इन्द्रियों द्वारा कर्म मे प्रवृत होता है। मन ज्ञान इन्द्रियो द्वारा बाहय जगत का ज्ञान प्राप्त कर कर्म इन्द्रियों द्वारा कर्म में प्रवृत होता है। मन कम्प्यूटर की भांति जड़ है, जैसे कम्प्यूटर स्व चालित नहीं है। चेतन सत्ता जैसा निर्देश देती है, तदनुसार कार्य करता है। वैसा ही मन है। मन जड़ है और चेतन सत्ता इस को चलाने वाली आत्मा है। मन का धर्म है संकल्प –विकल्प करना अर्थात् विचार शक्ति को उत्पन्न करना, परन्तु इस में इतनी क्षमता नही कि स्वंय विचार उठाये। चेतन आत्मा जो विचारना चाहता है इसी मन द्वारा ही विचारता है। भूल यही करते हैं, दोष मन पर ही डाल देते हैं और स्वंय को निर्दोष सिद्ध करने का स्वभाव बना लेते हैं कि मैं क्या करूं, मन मानता नही, मन अति चंचल है, मन ही विचार रहा है और न जाने इस निर्दोष मन के लिए क्या–क्या मिथ्या आरोप धारण कर लेते हैं। मन द्वारा विचार तरंगे उत्पन्न तंरगे इतनी तीव्र गति से कार्य करती हैं कि लगने लगता है कि मन स्वचालित है।

स्वयं को समझने के लिए सर्व प्रथम दृढ़ निश्चय से आत्मा और शरीर को समझें कि मैं आत्मा हूँ और शरीर को समझें कि मैं आत्मा हूँ और शरीर, मन प्राण इन्द्रियाँ मेरे साधन है, मैं ही इन का स्वामी और ये मेरे सेवक हैं। कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि जब राजा मंत्री पर नियन्त्रण नही रखता तो मन्त्री स्वच्छन्द हो कर अपनी मनमानी करने लगता है। अब राजा कहता है, मैं क्या करूं, मंत्री ही नहीं सुनता। राजा यहाँ भूल करता है उस ने ही तो मंत्री को स्वच्छन्द बनाया है। विचारो को जब आत्मा उठाना चाहता है तो मन ही उस का सहयोगी होता है परम पिता परमात्मा के अनुपम उपहारों में से मन को सर्वश्रेष्ठ उपहार कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। मन ही विचारों का प्रवाह हैं, जिस का नियन्त्रण आत्मा करता हैं। विचार सकारात्मक और नकारात्मक होते है, कौन से विचार उठाने है, इस का चयन आत्मा करता है। ये विचार ही चित्त पर संस्कार बन जाते है चित्त को कम्प्यूटर के उदाहरण से बडी सरलता से समझा जा सकता है। कम्प्यूटर का आविष्कार चित्त पर आधारित है। वैज्ञानिकों ने चित्त की कार्य शैली पर ही चिन्तन करके ही कम्प्यूटर के प्रोग्राम की व्यवस्था की है। कम्प्यूटर और मन दोनों जड़ हैं। दोनों को चलाने से लिए एक चेतन सत्ता चाहिए। मन विचारों को चित्त पट पर अंकित करता है, इसे स्मृति और कम्प्यूटर की भाषा में memory कहा जाता है। मन जैसे विचार देते है। वैसे ही हमें मिलते हैं। garbage in garbage out का सिद्धांत पूर्णत: काम करता है। चित्त और कम्प्यूटर में इतना सामर्थ्य नहीं की वे अपनी ओर से कुछ जोड़ सकें अथवा वहां से मिटा सकें। चित्त और कम्पूटर में भेद केवल इतना है कि कम्प्यूटर मानवीय कृति है और चित्त ईश्वर की एक अनुपम देनों में से एक देन है।

हमारा व्यक्तित्व हमारे द्वारा उत्पन्न किये विचारो पर ही निर्भर करता है, जिन्हें हम अपने मन से उठा रहे होते हैं, विचारों की गुणवत्ता का भी मैं चेतन आत्मा जिम्मेवार बनता हूँ। अच्छे–बुरे, सकारात्मक–नकारात्मक–सृजनात्मक–ध्वंसात्मक विचार हो सकते हैं, हम जिस प्रकार के विचार उठाते हैं, वैसा ही हमारा स्वभाव बनता जाता है। इसी स्वभावानुसार कर्म करने में प्रवृत होते है, जो कालांतर में संस्कार बन जाते हैं और लगातार करने से हमारी आदत बन जाती है, जिसमें हमारा निज का व्यक्तित्व झलकता है। मनीषियों ने भी इसी सिद्धात को सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है– **संकल्पमय: पुरुष:** इस का भाव भी यही है कि मनुष्य जैसा संकल्प करता है वैसा ही बन जाता है। हमारा मन ही शिव हो, क्योंकि जब तक मन शिव संकल्पों से युक्त नही रहेगा, तब तक हमारे लिए किसी भी क्षेत्र में उत्कर्ष पाना सम्भव नही है। मन को साधकर ही मनुष्य उन्नति की ओर अग्रसर होता है और मन की जीत पर ही उस की जीत निर्भर है। मन के हारने पर उस का हारना अवश्यम्भावी है। समस्याओं का मूल कारण हम स्वंय है समस्त मानसिक समस्याओं का समाधान मन की सार्थक चिन्तन शैली से ही हो सकता है।

अब जब यह अच्छी प्रकार सिद्ध कर लिया है कि शरीर और आत्मा दोनों एक नहीं दोनो की अपनी अलग आत्मा सत्ता है, इस ज्ञान के साथ यह समझना भी अति आवश्यक है कि शरीर भौतिक पदार्थो से बना है और आत्मा अभौतिक है। शरीर और आत्मा की आवश्कताएं भी अलग–अलग हैं, शरीर की पुष्टि भौतिक पदार्थो से होती है। भौतिक साधनों की उपलब्धि से शरीर सुखी व दु:खी होता रहता है। दूसरी ओर आत्मा सदा आनन्द की खोज में भटकती रहती है। आत्मा नित्य है, इसलिए नित्य आनन्द जो ईश्वर से मिल सकता है उस को पाना चाहता है। हम प्राय: अपने जीवन में प्रत्यक्ष करते हैं कि कई लोग कहते हुए सुने जाते हैं कि उन के पास प्रचुर मात्रा में धन–सम्पति हैं, भौतिक सामग्री है सन्तान आज्ञाकारी है और इस दृष्टि से स्वयं को भाग्यशाली समझते हैं, परन्तु भीतर ही भीतर आशंकित,भयभीत, अशांत, उदास तथा एक असुरक्षित की भावना से सदा घिरे रहते हैं। उन्हें जीवन में एक खालीपन हर पल सताता रहता है, कारण को पकड़ नहीं पाते कि जिन जड़ व चेतन पदार्थो में वे सुख मान रहे हैं, वे स्वंय में अनित्य हैं, वे नित्य सुख दे नही सकते अनित्य पदार्थो में तो क्षणिक सुख होता है।

स्व के प्रति एक मिथ्या धारणा है कि सुख और दु:ख का आश्रय अन्यों पर आधारित है। हम परिस्थितियों को व दूसरों को सदैव अपने ही अनुकूल बनाना चाहते हैं जो असम्भव है, इस श्लोक द्वारा स्पष्ट किया गया हैं।

सुखस्य दु:खस्य न कोऽपि दाता
परोप ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमान:
स्वकर्म सूत्रैग्रंथितोहि लोक:।।

अर्थात कोई किसी को न सुख देता हैं, न दु:ख दूसरों ने हमें सुख दिया है अथवा दु:ख दिया, यह कुबुद्धि हैं। मैं करने वाला हूँ, यह व्यर्थ का अभिमान हैं, वास्तव में तो यह सम्पूर्ण संसार स्वकर्म में आबद्ध है।

जैसा करोगे वैसा भरोगे, परिस्थिति के अनुकूल स्वयं को ढालना पड़ता है और दूसरो के संस्कार अलग–अलग होने से उन्हे भी स्वंय के अनुकूल नही बना सकते अपितु प्रयास करें कि यथा सम्भव उनके अनुकूल बन जाएँ। जहाँ अधिकार और कर्तव्य का प्रश्न उपस्थित हो, वहां कर्तव्य पालन की भावना से स्वयं को सुखी बनाया जा सकता है। प्रारम्भ में इस सिद्धात को पकड़ने में कठिनाई लग सकती है, परन्तु परिणाम सुखद ही होता है

हम प्राय: जन्म–जन्म के संस्कारों व बाह्रय वातावरण और अविद्या के आवरण के कारण अपने स्व अर्थात निज स्वरूप को पहचान नहीं पाते। जब शरीर और आत्मा दोनों के स्वरूप अलग हैं तो आत्मा के स्वरूप को समझने में सुविधा हो जाती है कि मैं आत्मा नित्य, अनादि, शांत, पवित्र, धार्मिक और एक स्वतंत्र सत्ता हूँ। जब तक आत्म ज्ञान जागृत नहीं हुआ तब तक सब बेकार और व्यर्थ है। आत्म ज्ञानी व्यक्ति अपनी इन्द्रियां, मन और बुद्धि को नियम–संयम में रखता हुआ आत्म तत्व की ओर बढ़ता है। आत्म ज्ञानी व्यक्ति सभी प्राणियों के साथ **आत्मवत्सर्वभूतेषु** व्यवहार करता है, वह मिथ्या अहंकार व अभिमान से दूर रहता है। इसलिए केवल विज्ञान ही नहीं आध्यात्मिक ज्ञान भी आवश्यक है। विज्ञान के विकास के बाद हमें सुविधाएं प्राप्त हुई है, ये क्षणिक हैं। भौतिक सुख प्रदाता हैं। शारीरिक सुख का अनुभव हैं। मन की भूख कैसे शांत होगी और मन का सुख क्या है इस का उत्तर विज्ञान के पास नही है, क्योंकि लोग अभी तक वैज्ञानिकों से इसका उत्तर भी नहीं पा सके कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है? शरीर के उपरान्त क्या आत्मा मर जाती है? अविद्या के कारण अपने–अपने मतों के आधार पर लोगों ने भिन्न–भिन्न मान्यताएं बना रखी हैं। आत्म सम्बन्धी ज्ञान तो आध्यात्मिक वैज्ञानिक ही दे सकते हैं।

सब ज्ञान तो सीख लिया,
पर आत्म ज्ञान ही सीखा ना
यही कारण है कि पंडित भी,
अनजान भी भटकते देखें हैं।

भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। ऋषि कणाद दोनों अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान को समझना ही धर्म मानते हैं, जिस से अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि होती है। अभ्युदय जिस के द्वारा लौकिक कल्याण अर्थात वर्तमान जीवन काल में सुख–सुविधाओं की प्राप्ति होती है, तथा नि:श्रेयस अर्थात् मोक्ष प्राप्ति होती है। अत: अपने निज की पहचान, आत्म सम्बन्धी ज्ञान का होना परम आवश्यक है, परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमें सद्बुद्धि प्रदान करे जिस से आत्म सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान को समझ सके। **धियो यो न: प्रचोदयात्।**

786/8 अर्बन एस्टेट
करनाल 132001, हरियाणा

कब बना हिंदू धर्म : भागवत और गीता का?

● आर्य प्रहलाद गिरि

पौराणिक कथा का मतलब ही है, अपने-अपने दिमाग को सुला कर, झूठ बोलने और झूठ सुनने के लिये तैयार हो जाना। यदि झूठ सहने की शक्ति आप में नहीं है, आप तार्किक हैं तो आप नास्तिक ही कहे जायेंगे, चाहे आप महर्षि दयानन्द सरस्वती ही क्यों न हों।

मैं भी 30 मार्च 2008 को जब काशी के दशाश्वमेध घाट जाकर पूर्व घोषणानुसार पंचांगकारों को शास्त्रार्थ हेतु चैलेंज किया था कि उन्हीं की उद्दंड-धांधली से हिन्दुओं के हर पर्व दो-दो दिन होते जा रहे हैं। यदि इनके पाखंडों पर अंकुश लगाने का आश्वासन मुझे न मिला तो मैं इन भ्रामक नकली पंचांगों को वहीं जला कर गंगा में फेंक दूंगा।

तब मुझ से पूछा गया था कि 'ज्योतिष में आपकी क्या डिग्री है, जो वहां के पंडितों से शास्त्रार्थ करने का दुस्साहस कर बैठे?'

"छात्रावस्था में संस्कृत-साहित्य से मध्यमा करते वक्त मैंने सोचा ही नहीं था कि मुझे भी पुरोहित होना होगा, इसलिये ज्योतिष की कोई डिग्री तो मुझे नहीं है, किन्तु दुर्भाग्य या सौभाग्यवश 40 वर्षों से अपने निगेश्वर मठ-शिव मंदिर के पुश्तैनी-पुजारी (नगर-पुरोहित) होने के अध्ययन और अनुभवों से मैं प्रमाणित कर दूंगा कि आप जैसे पंचांगकारों की धूर्तता से ही आज हिंदू समाज दिग्भ्रमित और हास्यास्पद होते जा रहा है।"

मेरे उक्त कथनों व प्रमाणों से प्रभावित वहाँ के विचारवान पत्रकार व वरिष्ठों के हस्तक्षेप पर अंततः उन्हें अपनी गलती माननी पड़ी। वहीं आदित्य पंचांग मेरे कटु शब्द शैली से असहमत होते हुए भी मेरे उच्च-उद्देश्यों का उल्लेखनीय सम्मान दिये।

ठीक वहीं 40 वर्षों का अनुभूत उत्तर लिये आज भी मैं अपने अंधभक्ति के नशा में अपने ही हाथों अपनी पीठ थपथपा कर नाश की ओर नाचते जा रहे महामूर्ख धर्म बंधुओं को चेता रहा हूँ कि यदि आज भी आप अपने धर्म को 'सत्य-सनातन-वैदिक धर्म' ही कह रहे हैं, तो बहुत भारी भ्रम में झूठ बोल रहे हैं! क्योंकि हिंदू धर्म अब सत्य-सनातन और वेद से काफी दूर जाकर भटक चुका है।

वेद में राधा, संतोषी, साईं, स्वामीनाथ जैसों के नामोनिशान नहीं है, उन्हें भी आप परमेश्वर-परमेश्वरी बनाकर घंटों बिताकर पूज रहे हैं। घर में बूढ़े माता-पिता के पास बैठने की भी फुर्सत नहीं है, किन्तु नये-नये बन रहे इन मंदिरों में घंटों कतारों में लगे रहते हो?

तुम बोल दो, कि अब हमारा हिंदू धर्म वेदों वाला सत्य सनातन धर्म नहीं रहा? क्योंकि वैदिक धर्म एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तिरेपन हजार एक सौ पंद्रह वर्ष पुराना है; जबकि इस हिंदू धर्म के गीता, भागवत पुराणादि सारे अनार्ष धर्म ग्रंथ, मंदिर और व्रत-त्योहार मात्र दो-ढाई हजार साल ही पुराने हैं।

'हिन्दू' शब्द भी वेद के नहीं, फारसी के उर्दू शब्द हैं। जैसे भोले बाबा। ये भारतीय संस्कृत और स्वाभिमान के विरुद्ध शब्द हैं। जैसे नेहरू ऊपर से गांधी का नाम लेकर अंदर से मार्क्सवाद पर चलते थे, उसी तरह आज के हिंदू लोग वेद का नाम लेकर जीवन भर वेद विरोधी पुराणों, उप पुराणों पर चलते रह कर अपने उसी वेद को अंगूठा दिखाते रहते हैं जिसमें मानवोत्थान हेतु ज्ञान-विज्ञान के अनंत और निर्मल भंडार भरे हैं। जबकि ये भारत का स्वर्णयुग कहा जाने वाला गुप्तकाल (चौथी सदी) के बाद बने हैं अठारहों पुराण। इसमें झूठों, मूर्खों, पांखडों और अश्लील कथाओं की भरमार है।

जैसे चोरी करने वाला अपना चेहरा छुपाये रखता है उसी तरह पुराणकारों ने महाभारत के सुख्यात लेखक 'वेदव्यास' के नाम का लेबल लगाकर समाज में असामाजिक-नकली ग्रंथ चला दिया। इस सच्चाई को जानकर भी हिंदू धर्म के सारे नकली कारोबारी, व्यापारी-एजेंट-ग्राहक कोई आवाज नहीं उठाता। बल्कि उल्टे चिल्लाते भी रहता है कि हमारा ही धर्म सबसे सच्चा और पुराना है।

यदि सच्चा ही है तो गीता और भागवत जो मुख्य धर्मग्रंथ माने जाते हैं, के छद्म लेखक अपने जगह पर वेदव्यास को क्यों बदनाम किया? भागवत पुराण में लिखा है कि 18000 श्लोक हैं, जबकि गिनने पर 14180 श्लोक ही ठहरते हैं?

महाभारत (भीष्म पर्व-40) में चिपकाया गया है कि गीता में 745 श्लोक हैं, जबकि गिनने पर मात्र 700 श्लोक ही हाथ लगते हैं?

जैनियों के देखा-देखी पुराणकारों ने भी विष्णु के चौबीस अवतार तो लिख दिये, किंतु दोनों सूचियों में किसी तरह 22 अवतारों को ही जोड़ सके। दशावतारों में बलराम के बदले श्रीकृष्ण को ही गायब कर दिये?

भागवत में लिखा है कि वेदव्यास के पुत्र शुकदेव ने परीक्षित (अभिमन्यु के पुत्र) को यह पुराण आद्योपांत 'सात दिन' में सुनाया। पहला झूठ-महाभारत के अनुसार परीक्षित के दादा-अर्जुन के जन्म से भी पहले शुकदेव जी मर चुके थे, फिर क्या भूत बनकर वे परीक्षित को भागवत कथा सुनाये? दूसरा झूठ- भारत में 'सप्ताह' का प्रचलन बेबीलोन से चौथी सदी में आया, स्पष्ट है कि ये ग्रंथ न द्वापर कालीन हैं, न वेदव्यास रचित।

चूँकि पुराणकारों ने वेदव्यास को भी विष्णु अवतार बताकर इनकी तथाकथित इन रचनाओं (पुराणों) को वेद-तुल्य ही बताने का दुस्साहस तो किया, किंतु भविष्य पुराणकार को ये अच्छा न लगा। वे चिल्ला उठे- भागवतपुराण को व्यास नहीं, दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने बनाया है। (प्रतिसर्ग पर्व - 3.28)

उन्नीसवीं सदी के सबसे बड़े क्रांतिकारी सत्यशोधक महर्षि दयानन्द की विश्व विख्यात पुस्तक-सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार-बाहरवीं सदी में बंगाल के संस्कृत कवि जयदेव (गीत गोविंदकार) के भाई वोपदेव ने ही 'मगध बौद्ध व्याकरण' और भागवत पुराण को वेदव्यास के छद्म नाम से लिखा, ताकि अंधभक्त लोग इसे सहर्ष स्वीकार लें।

यदि यह द्वापर युगीय कृष्ण कालीन (पाँच हजार वर्ष पूर्व की) रचना होती, तो इसमें जैन, बुद्ध तो नहीं ही रहते, मुसलमानों द्वारा मथुरादि मंदिरों के तोड़े जाने का भी जिक्र नहीं होता। भविष्य पुराण में तो अकबर, तुलसीदास आदि के भी जिक्र हैं।

अब जरा गीता महारानी की ओर चल कर सर्वप्रथम पैर छूकर प्रणाम कर लूँ, क्योंकि जैनियों और बौद्धों के पाखंडों के दबाव में हमारे सनातनी पंडितों ने भी पौराणिक पांखडों से ही रोकने के लिये इन्हीं को बनाया था। काश, ये पूर्णतः वेदानुकूल बनी होतीं, तो आज भी हमारी प्यारी माँ सी होती, जबकि ये अब परदादी-सी जर्जर बूढ़ी सिर्फ दर्शनीय बनकर ही रह गयी हैं। ये न बनी होतीं तो सारा हिंदू धर्म बौद्ध बन गया होता और बौद्धों को मुसलमान बना देना मुगलों के लिये अत्यंत सरल था। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की उस आंधी में हम सनातनियों को बचाने वाली यही गीता माता (2.49) बोली थी- "बुद्धौ शरणं अन्विच्छ!" मतलब- "बुद्ध नहीं, बुद्धि के सहारे सफलता की ओर बढ़ो!"

इनके 3.17 और 4.21 जैसे अनीश्वरवादी श्लोक भी सिद्ध करते हैं कि गीता जैन और बौद्धों से प्रभावित होकर ही लिखी गयी है, वर्ना युद्ध भूमि में गीता-प्रवचन समाप्त करते-करते गीताकार के नायक श्रीकृष्ण आस्था चैनल के प्रवचनकारों की भांति यह न कह बैठते कि हे अर्जुन! अब इस प्रवचन के संगेसंग इस गीता की पुस्तक भी छप चुकी है, तुम तो साक्षात् मुझ से सुन ही लिये हो, बाकी जो भी अतार्किक (अंधभक्त) मेरे विचारों पर भले मत चलें, किन्तु परमोपास्य ईश्वर के जगह पर मेरी ही पूजा करते हुए इस पुस्तक को जो जो पढ़ेंगे या सुनेंगे भी तो ज्ञाताज्ञात सभी पापों से छुड़ाकर मनचाहे किसी भी पुण्य लोक को उन्हें मैं कसम खाकर कहता हूँ कि दे दूंगा। इसमें कुछ भी तर्क या संशय मत करना, क्योंकि बता चुका हूँ कि तर्क करने वाला नष्ट हो जाता है- 4.40? (जबकि न्याय शास्त्र कहता है- 'वादे-वादे जायते तत्व बोधः- तर्क करने से ही सच्चाई मिलती है) इसीलिये गीता में बौद्धों से कहीं अधिक जैन सिद्धांतों के भी दर्शन होते हैं (देखें- 2.55/3.17/4.21)

ये तो सर्वविदित ही है कि अत्यंत आक्रामक बने हुए बौद्धों से बचने हेतु ही वेदविरोधी बुद्ध को भी अवतार मानकर पूजने लगे थे, किंतु बौद्धों से लड़ने में जैनियों का समर्थन पाने हेतु ही उस समय गीताकार ने सांकेतिक शैली में शैली में लिखा है- "बुद्ध से काफी श्रेष्ठ अपने संयमित मन के मंदिर में स्थापित इस 'बुद्धि' के ही सहारे हे महाबाहो महावीर अरिहंत अर्जुन! तू काम रूपी दुर्जय शत्रुओं को जीतो! (गीता-3.43)

बुद्ध और महावीर की आंधी में ढाई हजार साल पहले के महाभारत विजेता जननेता श्रीकृष्ण को सर्वाराध्य बना देना- गीताकार को भारतरत्न भी दिला सकता था, यदि गीता वेद विरोधी न होती तो। 'वेद छोटा तालाब है जबकि गीता ज्ञान विशाल समुद्र 2.46, 'वेद से बुद्धि भ्रष्ट (विचलित) हो जाती है'- 2.53, 'ओम् नामक मोक्षप्रद जो वेदों का ईश्वर है वह मैं ही हूँ'- 8.13; तूने जो मेरा अभी दिव्य रूप देखा वो वेदों के वश की बात नहीं है, सिर्फ भक्ति से ही मुझे पा सकते हो'- 11.48; वेदों में सामवेद ही सबसे अच्छा है, इसलिये वह मैं हूँ, बाकी तीनों पर कोई अन्य महापुरुष अपना स्वरूप बताने का दावा करे तो मुझे कोई एतराज नहीं- 10.22।

यदि गीता में कहीं यज्ञ और वेद की महत्ता घूस के रूप में दी भी गयी है तो सिर्फ इसलिये कि वेदों के उत्तराधिकारी जो-जो मूर्ख आर्य समाजी हैं, वे भ्रमित संमोहित होकर चुप बैठे रहें। उनको लगे कि ये गीता सिर्फ सनातनियों की ही नहीं, मेरी भी है।

बाजार में गाइड (कुंजिका) के आते ही आलसी छात्र लोग कोर्स की मोटी-मोटी किताबों को पढ़ना बंद कर के गाइड को ही

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

एक बार फिर आना होगा

जीवनभर संघर्ष किया था,
अन्धकार अज्ञान मिटाने।
स्वयं मिटे तुम ज्योति जलाकर,
महातमस् का मूल मिटाने।
दीप जलाकर नए सहस्त्रों,
तुम चिरनिद्रा में कहां खो गए?
इन दीपों का स्नेह चुक गया,
ज्योति सिमटती ही जाती है।
अन्तिम भभक मिटादे, इससे
पहले तुम को आना होगा।। एक बार.....

अन्धकार की दशा आज यह,
नेता अन्धे, जनता अन्धी।
नयन मुंदे पर चले जा रहे,
जड़ विश्वासों के ये बन्दी।
भावी से सुन्दर सपनों में,
खोकर वर्तमान भूले हैं।
कल की माया की आशा में,
संचित माया लुटा रहे है।
इन्हें जगाने, पथ पर लाने,
फिर से शंख गुंजाना होगा।। एक बार....

सोचा होगा तुमने ये,
नव शिष्य जोश से सदा बढ़ेंगे।
तुमने था जो मंत्र दिया,
उससे प्रेरित से सदा रहेंगे।
कुछ तो दीवाने बन चमके,
अन्तिम लौ तक धधक मिटे वे।
पर छाये प्रच्छन्न शिष्य ही,
मठाधीश बन अड़े रहे वे।
छाया हे घनघोर अंधेरा,
इसे मिटाने आना होगा।। एक बार......

स्वप्न कभी तुमने देखा था,
भारत फिर सिरमौर बनेगा।
दस्युराज्य का मूल मिटाकर,
वसुधा को फिर आर्य करेगा।
पर अनार्य और दस्युभाव अब
घोर तमस फैलाते जाते।
नभ में टिम–टिम करते तारे,
निज को चन्द्र समझ हैं बैठे।
घोर अमावस फिर घिर आए,
इससे पहले आना होगा।
जग भर का सन्ताप मिटाने
एक बार फिर आना होगा।।

डॉ. सत्यकाम वर्मा

(आर्य जगत् 6 नवम्बर 1994 में प्रकाशित)

आर्यो सम्भल जाओ अन्यथा पछताओगे

हमारा प्यारा आर्यवर्त (भारत) किसी समय समस्त संसार का स्वामी था। सकल विश्व में भारत की महिमा के गीत गाए जाते थे। संसार भारत को देवभूमि मानकर इसके आगे शीश झुकाता था, वस्तुतः सारे जगत में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था तथा सारी दुनियां के नर–नारी प्रातः उठकर परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि हे सकल विश्व के रचने वाले जगदीश्वर ! हमें दूसरा जन्म ऋषिओं की भूमि आर्यवर्त में देने की कृपा करना जिससे हम सब वेदवेता, त्यागी, तपस्वी, ईश्वर–भक्त धर्मात्मा और परोपकारी ऋषियों के चरणों में बैठकर वैदिक ज्ञान प्राप्त करके अपने इस मानव तन को सफल करके मोक्ष की प्राप्ति कर सकें। उस समय आर्यों की समस्त संसार में धाक थी। विद्वान कहते हैं कि उस समय भारत वासी देवता माने जाते थें।

इस देश में सत्यवादी हरिश्चन्द्र अश्वपति, राम, भोज, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य जैसे ईश्वर–भक्त धर्मात्मा, प्रजापालक सम्राट् थे जो जनता को पुत्र की तरह हृदय से प्यार करते थे। यह क्रम महाभारत काल तक चलता रहा किन्तु महाभारत के युद्ध के पश्चात् यहां वैदिक विद्वानों की कमी हो गई थी यही नहीं हमारी प्रतिष्ठा आपस की फूट ने खत्म कर दी जिससे यह देश लगभग एक हजार वर्ष तक विधर्मी मुस्लमानों और ईसाइयों के पराधीन रहा जिन्होंने यहां रात–दिन भारी अत्याचार किए। विधर्मी लोगों ने हमारे धर्म ग्रन्थ जला दिए तथा लाखों देश–भक्तों की हत्या कराई तथा दुष्टों ने हमारी बहिन–बेटियों का धर्म नष्ट किया।

जगतपिता जगदीश्वर की कृपा से इस देवभूमि में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने टंकारा (गुजरात) में कर्षण जी तिवारी (अम्बाशंकर) के घर माता यशोदा बाई की कोख से जन्म लिया जिनका बालकपन का नाम मूलशंकर था। स्वामी दयानन्द जी ने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लिया तथा गुरु विरजानन्द सरस्वती से मथुरा नगरी (उत्तर प्रदेश) में वेद ज्ञान प्राप्त किया। स्वामी जी ने गुरु देव की आज्ञा मानकार भारत भर में वैदिक प्रचार किया। इस कार्य को करने में उनके सामने भारी विघ्न बाधाएं आईं लेकिन वे कभी नहीं घबराए। उन पर ईटें पत्थर वर्षाए गए, गोबर कीचड़ फैंका गया और घातक हमले किए गये।

स्वामी जी ने सबसे पहले पौंगा पंथी पौराणिकों पर हमला किया तथा स्पष्ट किया कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं। वेदों के विरुद्ध जितने भी ग्रन्थ हैं सब कपोल कल्पित हैं तथा मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है। उन्होंने काशी, मथुरा, हरिद्वार, जगनाथ अमरकोट आदि स्थानों पर जाकर वेदप्रचार करके पाखण्डी लोगों को परास्त किया। इसके बाद मुल्ला–मौलवियों को तथा पोप–पादरियों को शास्त्रार्थ में हराया। स्वामी जी ने अपने महान् ग्रंथ सत्यार्भप्रकाश में तेरहवां व चौदहवां समुल्लास ईसाइयों व मुस्लमानों को झूठा व पाखण्डी प्रमाणित करते हुए लिखे। बौद्ध और जैनमत का खण्डन किया। उस समय उनसे कोई भी विधर्मी विजय प्राप्त न कर सका। वस्तुतः वे अजेय योद्धा माने गए। संसार उन्हे श्रद्धा से याद करता है।

स्वामी जी ने घोषणा की कि संसार में कर्म ही प्रधान है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है ईश्वर उसे वैसा ही फल देता है। उन्होंने वेदों के प्रमाण देते हुए ईश्वर का निराकार सर्वव्यापक, अजन्मा अनादि, अनुपम, सर्वज्ञ, अजर, अमर, न्यायकारी, दयालु, बताया तथा दृढ़ता पूर्वक कहा कि ईश्वर कभी अवतार नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है इसलिए उसे जन्म धारण करने की जरूरत नहीं है।

स्वामी जी ने जन्म–जाति को गलत बताया तथा घोषणा की कि जो व्यक्ति ब्राह्मण के घर में जन्म लेकर वेद विरुद्ध कार्य करता है वह शूद्र से भी नीची कोटि में चला जाता है तथा संसार में दुष्ट की पदवी पाता है तथा जो व्यक्ति शूद्र के घर जन्म लेकर भी अच्छे कर्म करके विद्वान, ईश्वर–भक्त बन जाता है वह ब्राह्मण की पदवी पाता है।

स्वामी जी ने गऊ को माता बताया तथा गोकरूणा निधि लिखकर व स्वेदेशी राज्य को सुखदाई बताया। उन जैसा त्यागी तपस्वी ईश्वर–भक्त धर्मात्मा, सदाचारी, तपधारी, साधु संसार में अब तक कोई नहीं आया। आर्यो, आपस की लड़ाई बंद करो, वेद प्रचार करके संसार का काया कल्प कर दो अन्यथा पछताते रह जाओगे। मेरी सबसे यही प्रार्थना है।

आर्यकुमारो ! विश्व में, करो वेद प्रचार।
देव पुरुष बनकर करो, जगती का उद्धार।।
याद रखो संसार में, जो करते शुभ कर्म ।
वही पालते हे सुनो, पावन वैदिक धर्म।

पं. नन्दलाल 'निर्भय'
आर्यसदन, बहीन,
जनपद पलवल (हरियाणा)
09813845774

****

पृष्ठ 06का शेष

दयानन्द वाङ्मय...

हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।"[9] इस पर पूज्यपाद मीमासकजी लिखते हैं–"जिस व्यक्ति ने परीक्षा करके तीन हजार ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप में चुना, उसने कितने सहस्त्र ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा, यह अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।"[10] अतः ऐसे बहुश्रुत महर्षि के किसी भी लेख को बिना विशेष विचार किये अयुक्त ठहराना अत्यन्त दुःसाहस की बात है। हाँ, लेखक के प्रमादादि से हुई अशुद्धियों की बात दूसरी है।[11]

(6) **गौतम–अहल्या और इन्द्र–वृत्रासुर की सत्य कथा**

इसका सबसे पुराना उल्लेख चैत्र सं. 1937 में प्रकाशित 'गोकरुणानिधि' के अन्तिम पृष्ठ पर मिलता है। अतः इससे पूर्व यह अवश्य प्रकाशित हुई होगी। इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्दिष्ट 'गौतम–अहल्या' और 'इन्द्र–वृत्रासुर' की आलंकारिक कथा का वास्तविक स्वरूप बताया है। इसके वास्तविक स्वरूप को न समझकर पुराणों में इसका अत्यन्त वीभत्स रूप में वर्णन किया गया है। इन दोनों कथाओं का वास्तविक स्वरूप 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य' प्रकरण में भी मिलता है।

(7) **भ्रमोच्छेदन** (आषाढ़ 1937 विक्रमीयः)

काशीकेश्रीराजाशिवप्रसाद'सितारेहिन्द' ने ऋषि की 'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' पर 'निवेदन' नाम से कुछ आक्षेप सं. 1937 वैशाख के अन्त में या ज्येष्ठ के आदि में छपवाये थे। उन पर स्वामी विशुद्धानन्दजी के हस्ताक्षर थे। अतएव महर्षि ने उन आक्षेपों के उत्तर में 'भ्रमोच्छेदन' नाम का ग्रन्थ रचा। इसका रचना काल 1937 वि. स. ज्येष्ठ कृष्ण–2 गुरुवार था।

(8) **अनुभ्रमोच्छेदन** (फाल्गुन सं. 1937)

'भ्रमोच्छेदन' के उत्तर में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने 'द्वितीय निवेदन' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस 'द्वितीय निवेदन' के उत्तर में यह 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ लिखा गया।

शेष अगले अंक में....

पृष्ठ 07का शेष

आर्यों का तुष्टीकरण...

बताई। उस दिन मैं कार्यक्रम स्थल में नहीं थी।

ठीक है हम नारियाँ बालकों के सदृश वेदपाठ कर लेंगी, पर तुष्टीकरण की नीति के चलते यदि नारियों को समान अधिकार नहीं होगा, तो उस वेदपाठ का कोई मूल्य नहीं।

तुष्टीकरण के कारण नारियों को पीछे बैठने की यह जो घटना हुई उससे मैने वहाँ निर्णय लिया कि मैं इनका सम्मान नहीं लूँगी, और मैं वहाँ से उठकर चली गयी। मैं अभी अपने निवास पर पहुँची भी नहीं थी, तब तक अनेक दूरभाष आ पहुँचे, क्या घटना हुई, क्या घटना हुई।

ऐसी घटना आर्यसमाज के लिए अतिघातक है। आर्यसमाज की छवि को धूमिल करने वाली है। तुष्टीकरण आर्यों के लिए अनुचित है।

जो धरती, बुद्धि, मति, शक्ति रूप स्त्रीत्व से विरत होकर कुछ कर ही नहीं सकते, ऐसे भद्रेश साधु सदृश जन स्त्रियों को पीछे बैठने का आदेश देते हैं! और तुष्टीकरण करने वाले भी धरती, बुद्धि, मति, शक्ति रूप स्त्रीत्व के बिना कुछ भी करने में असमर्थ हैं, वे जन भी उनके आदेश का पालन करते हैं! तो यह अत्यन्त दुःखद है।

यहाँ मैं यह कहना चाहती हूँ कि यदि भद्रेश साधु स्त्रियों को पीछे बैठने का निर्देश दे सकते हैं तो आर्यजन भद्रेश साधु को यह क्यों नहीं समझा पाये कि आपकी मान्यता हमारे परिसर में नहीं चलेगी? हम अपने आमन्त्रितों को पीछे नहीं कर सकते हैं! आर्यो तुष्टीकरण से बचें! अन्यथा महर्षि दयानन्द की यह बड़ी हार होगी।

प्राचार्या– पाणिनि कन्या महाविद्यालय, वाराणसी–10
सम्पर्क – आर्य कन्या गुरुकुल, शिवगंज, जि. सिरोही 307027 (राज.)

पृष्ठ 09का शेष

कब बना हिंदू धर्म : ...

पढ़ने लग जाते हैं, चाहे वह नकली प्रकाशन का ही क्यों न हो, उसी तरह गीता की असलियत बताये बिना वेद को गीता से आगे नहीं किया जा सकता। महान गवेषणात्मक पुस्तक–वैदिक संपत्ति में भी गीता, उपनिषद और वेदांत दर्शन को लेखक पं. रघुनंदन शर्मा ने काफी संदिग्ध नजरों से देखा है, इन तीनों में वेद विरोधी तत्व भी घुसे हुए हैं, वेदांत शब्द ही वेद पर पूर्णविराम लगा दे रहा है। प्रस्थान–त्रयी कहलाने वाले इन तीन में गीता को महर्षि दयानन्द ने भी पठनीय पुस्तकों की श्रेणी से बाहर रखा है। फिर भी काव्य–कल्पित राधोत्पत्ति के पहले ही ये रचे गये हैं। वर्ना, गीता नहीं तो भागवत में राधा का भी जिक्र जरूर रहता।

गीता (9.22 और 18.66) कहती है कि तुम सब धर्म–कर्म को छोड़ कर, निर्योगक्षेम होकर मुझे ही भजते रहो, मैं सब ठीक कर दूंगा। जबकि वेद (यजु–22, 22) कहते हैं– मनुष्यो, तुम नयी–नयी उपलब्धियों को पाओ और पाये हुओं को बचाये रखने में सक्षम बनो!

गीता (2.47) निरुद्देश्य कर्म करने को कहती है, जबकि श्रीकृष्ण खुद ही रुक्मणी जी के संग कैलाश पर 12 वर्षों तक रहकर पुत्र हेतु योग साधना किये थे।

गीता (7.6 एवं 15.7) में आत्मा को ईश्वर से उत्पन्न एक अंश बताया, (2.24 में) आत्मा को सर्वव्यापी व अचल बताया है, जो वेद विरुद्ध है।

ऋग्वेद (1.164.20) में है– प्रकृति रूपी वृक्ष पर बैठा जीवात्मा फलों को खा रहा है और परमात्मा उसे देख रहा है, यानी आत्मा, परमात्मा और प्रकृति ये तीनों तत्व शाश्वत सत्य हैं।

गीता श्रीकृष्ण को ईश्वरावतार बताती है, जबकि गीता के ही सुप्रीमो ग्रंथ–महाभारत (वनपर्व–12,46 एवं उद्योगपर्व–49, 21) में लिखा है कि कृष्ण और अर्जुन पूर्वजन्म में नर और नारायण ऋषि होते हुए भी मोक्ष न लेकर धर्मोद्धार के लिये सदा जन्म लेते रहते हैं। ब्रह्म (121) और विष्णु (5.1.59) पुराण में भी यही लिखा है।

गीता कहती है मैं झटपट पाप मुक्त करके मोक्ष दे दूंगा चाहे तुम कितना भी पापरत क्यों न हो (9.30) मनुस्मृति कहती है– 'आचारहीनं न पुनंति वेदाः' तथा यर्जुवेद (31.18) कहते हैं– ज्ञान और प्रकाशस्वरूप उस महान् परमात्मा को जाने बिना मृत्यु से तरने का और कोई रास्ता नहीं है।

इस तरह सत्य और वेद से दूर हो जाने के कारण ही हिंदू धर्म अन्य धर्मों से आज काफी पिछड़ चुका है। अब भी, पौराणिक गंथों को त्यागकर, वेदों की ओर हम न लौटे तो पाकिस्तानी हिंदुओं–सास्वतः मिट जाना पड़ेगा।

मुख्य पुजारी–निंगेश्वर मंदिर
निंगा, आसनसोल (प.ब.)
मो. 09735132360

मौत ज़िन्दगी से कितनी बेहतर है

जिन्दा थे तो किसी ने पास भी बैठाया नहीं।
अब खुद मेरे चारों और बैठे हैं।।
पहले कभी किसी ने मेरा हाल भी न पूछा।
अब सभी आंसू बहाये जा रहे हैं।।
पहले कभी एक रुमाल भी भेंट न किया।
अब शाल और दुशाले औढ़ाए जा रहे हैं।
सब को पता है कि अब इसके काम के नहीं।
मगर फिर भी दुनियादारी दिखाये जा रहे हैं।।
कभी किसी ने एक वक्त का खाना नहीं खिलाया।
अब देसी घी मेरे मुँह में डाले जा रहे है।।
जिन्दगी में एक कदम भी साथ न चल सके।
अब फूलों से सजाकर कन्धा दे रहे हैं।।
आज का पता चला कि मौत जिन्दगी से कितनी बेहतर है।
हम तो बेवजह ही जिन्दगी की चाहत किये जा रहे हैं।।

कृष्णमोहन गोयल
113–बाजार मोड़, अमरोहा–244221

यह कविता उस का दृष्टिकोण हो सकता है हम तो उस जिन्दगी को गले लगाने की बात करते हैं जो परमात्मा ने मृत्यु से मुक्ति हेतु प्रदान की हैं

– सम्पादक

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11 \6066\2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103 \2015-17
Posted with permission at N.D.P.S.O. ON 16-17 \11 \2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39 \57

आर.आर. बावा. डी.ए.वी. बटाला में महात्मा आनन्द स्वामी जी की पुण्यतिथि पर श्रद्धांजलि समारोह का आयोजन

आर.आर.बावा. डी.ए.वी. कालेज फॉर गर्ल्ज़, बटाला में कालेज की प्रिंसीपल प्रो. डॉ. (श्रीमती) अजय सरीन के निर्देशानुसार एवं स्वामी दयानंद अध्ययन केन्द्र के तत्वावधान में श्रीमती राज शर्मा को आर्डीनेटर एवं प्रो. सुनीलदत्त को–को आर्डीनेटर के नेतृत्व में महात्मा आनन्द स्वामी जी की पुण्य तिथि पर श्रद्धांजलि समारोह का आयोजन किया गया।

श्रीमती राज शर्मा ने महात्मा आनन्द स्वामी के जीवन के विविध प्रसगों की चर्चा की। इतिहास विभाग से प्रो. गुरप्रीत सिंह ने महात्मा आनन्द स्वामी जी की समाज को देन पर अपने विचार रखे।

प्रिंसीपल प्रो. डॉ. (श्रीमती) अजय सरीन ने महात्मा जी को श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए कहा कि महात्मा हंसराज जी के उत्तराधिकारी, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान, डी.ए.वी. आन्दोलन के प्रबल पोषक, अनेकों आर्य संस्थाओं के जन्म दाता एवं 'मिलाप' समाचार–पत्र के संस्थापक, आर्य संन्यासी, महान् पत्रकार एवं स्वतन्त्रता सेनानी महात्मा आनन्द स्वामी जी आर्य समाज एवं डी.ए.वी. की महान् विभूति रहे हैं। आप द्वारा रचित अनेक पुस्तकें आज मानवमात्र को प्रेरित करती हुई उनका मार्ग दर्शन कर रहीं हैं जिनमें उन्होंने वेदों के ज्ञान को सरलीकृत करके जनसाधारण के लिए सुलभ बनाया है। ऐसे महामानव से हमें प्रेरणा प्राप्त करके अपने जीवन को समाज कल्याण में लगाना चाहिए।

इस अवसर पर कालेज के प्राध्यापक वर्ग एवं कर्मचारी वर्ग सहित छात्राओं ने भाग लिया। शान्ति पाठोच्चारण से यह समारोह सम्पन्न हुआ।

डी.ए.वी. पक्खोवाल रोड, लुधियाना के आर्य युवा समाज द्वारा वेद प्रचार

देश की नैतिक, चारित्रिक एवं सांस्कृतिक उन्नति हेतु प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के आदेशानुसार आर्य युवा समाज डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, पक्खोवाल रोड़, लुधियाना मे **'वेद प्रचार संबंधी गतिविधियों'** का आयोजन किया गया। इसका शुभारंभ अग्निहोत्र से हुआ। हवन में छात्रों और शिक्षकों ने आहुतियाँ अर्पित करते हुए ईश्वर से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की प्रार्थना की तथा 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष किया।

ऋषि महिमा, वेदवाणी एवं ईश्वर भक्ति से भरपूर सुमधुर भजन, चतुर्वेदाधारित मन्त्रोच्चारण, वेद प्रचार भाषण प्रतियोगिता, ऋषि के उपदेशों को दर्शाती हुई लघुनाटिका, वेद मंत्रों पर आधारित सांस्कृतिक नृत्य, प्रेरणादायक कहानी सुनाना व स्वामी दयानन्द के जीवन पर आधारित नाटक आदि प्रस्तुत किए गए। इन गतिविधियों द्वारा विद्यार्थियों ने आर्य समाज के मूल सिद्धान्तों व ऋषि दयानन्द के मन्तव्य को दर्शाया। इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य ऋषि के जीवन मूल्यों एवं आदर्शों को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना था ताकि उनका स्वप्न पूरा हो सके।

कार्यक्रम के मुख्यातिथि 'आर्य वेद प्रचार मण्डल, लुधियाना' के मंत्री श्रीमान् रोशनलाल आर्य जी ने ''आधुनिक समय में वेदों के महत्व एवं वेद प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता क्यों है?'' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने बताया कि वेदों में निहित ज्ञान एवं ऋषि दयानन्द के उपदेशों को आत्मसात् करके ही हम अपना और दूसरों कल्याण कर सकते हैं। स्कूल के प्रधानाचार्य डॉ मोहन लाल शर्मा जी ने कहा छात्रों के नैतिक चरित्र को उच्च करने करने हेतु ऐसी गतिविधियां अति आवश्यक हैं और हम ऐसी गतिविधियों को निरन्तर करते रहने के लिए वचनबद्ध हैं।

डी.ए.वी. शोघी (हिमाचल) में आर्य समाज गतिविधियाँ

विद्यालय में श्री हंसराज जी के जन्मदिन पर हवन का आयोजन किया गया और हंसराज जी के जीवन व विचारों को प्रस्तुत किया गया। आर्य युवा समाज शोघी के बच्चों द्वारा दिनांक 18.8.2015 को वन विभाग के अधिकारियों के सहयोग से औद्योगिक क्षेत्र के साथ सटी भूमि में पौधारोपण किया गया। आर्य युवा समाज शोघी ने साप्ताहिक हवन आयोजित किया जाता रहा है जिसमें कक्षा वार विद्यार्थी भाग लेते हैं। आर्य युवा समाज शोघी ने रक्षा बन्धन के उपलक्ष पर आर्य अनाथालय फिरोजपुर को दिनांक 27.08.2015 रू 1100 का दान दिया। आर्य युवा समाज शोघी के द्वारा जरूरतमंद लोगों को लगभग 51 कम्बल वितरण किये गये।

डी.ए.वी. विद्यालय, जींद (हरियाणा) में शिक्षक दिवस का आयोजन

स्थानीय डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, में शिक्षक दिवस मनाया गया। दिवस की शुरूआत पौधारोपण से की गई। सबसे पहले सभी सदनों के प्रभारी, कैप्टन, वाईस कैप्टन, स्पोर्टस कैप्टन, ईको कल्व के 100 से अधिक बच्चों एवं अध्यापकों ने पौधारोपण किया और पर्यावरण की रक्षा हेतु शपथ ली। कार्यक्रम का शुभारम्भ विद्यालय के प्राचार्य हरेशपाल पांचाल, सुपरवाईजर हैड एवम् कोर्डीनेटर द्वारा दीप प्रज्जवलित कर किया गया। तदुपरान्त देश के प्रथम उपराष्ट्रपति एवं महान शिक्षक डॉ. सर्वपल्ली राधा कृष्णन को याद करते हुए उनके पद चिन्हों पर चलने की प्रेरणा ली। इस अवसर पर शिक्षक वर्ग द्वारा अनेक रंगारंग कार्यक्रम जैसे सामूहिक गीत, कविता पाठ, कवि सम्मेलन इत्यादि प्रस्तुत किए गए। प्राचार्य हरेशपाल पांचाल ने कहा कि शिक्षक वास्तव में आचार्य होता है। आचार्य का अर्थ है आचरण करने योग्य व्यक्तित्व अर्थात् जिसका आचरण किया जाए वास्तव में वही आचार्य है। अतः हम शिक्षक वर्ग को अपने दायित्व का निर्वहन करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**